भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य

का

सचित्र जीवन-चरित

संग्रहकर्त्ता

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट,
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

प्रथम संस्करण सं० १९७२
द्वितायसंस्करण सं० २००३

[बिना मूल्य वितरित]

प्रवासी प्रेस,
१२०।२, अपरसरकुलर रोड,
कलकता

द्वितीय संस्करणका प्राक्कथन

आज जब इस पुस्तका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है, भ्रातृ-द्वयका शरीरान्त हो चुका है, लेकिन उनकी अमर कीर्त्ति अब भी अमर है। उनके कार्योंको लोग अब भी याद करते हैं। उनकी भावनाओंकी पूजा करनेवाले अब भी वर्त्तमान हैं। इस पुस्तकका द्वितीय सस्करण रायबहादुर विश्वेश्वरलालजी द्वारा सस्थापित ट्रस्ट द्वारा ही प्रकाशित किया जा रहा है। ईश्वर उनकी दिवगत आत्माओंको शान्ति प्रदान करे, यही हम सबकी प्रार्थना है।

८, रायल एक्सचेंज प्लेस,
कलकत्ता
चैत्र पूर्णिमा, २००३

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट

प्रस्तावना

आज हमारी बहुत दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई है। हम बहुत दिनोंसे चाहते थे कि हिन्दी-भाषामें भगवान् भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य स्वामी की जीवनी प्रकाशितकर हम अपना जन्म सफल करें। भगवान्के अनुग्रहसे हमें आज वह सुअवसर प्राप्त हुआ है और भाष्यकारकी जीवनी लेकर हम बड़े अभिमानके साथ आज अपने श्रीवैष्णव बन्धुओंके सम्मुख उपस्थित होते हैं। कहना न होगा कि यह जीवनी हमारे पास कई वर्षोंसे लिखी पड़ी थी, और इसे प्रेसमें छापनेके लिये देनेका सुअवसर इसलिये प्राप्त नहीं हुआ था कि हम भाष्यकारकी जीवनी छपवाकर श्रीवैष्णव मण्डलीमें बिना मूल्य वितरण करना चाहते थे। यदि हम इसे छपवाकर बिकवानेके पक्षपाती होते, तो ऐसे अनेक पुस्तक-प्रकाशक हैं, जो हाथों-हाथ इसका सर्वाधिकार क्रय करके मनमाने मूल्यपर इसे बेचते। पर यह हमको अभीष्ट न था। बहुत दिनों तक हम एक ऐसे उदार-चेता श्रीवैष्णव सज्जनकी खोजमें रहे, जो इस पुस्तकको अपने धनसे प्रकाशित कर बिना मूल्य वितरण करे। अन्तमें दयामय भगवान्के अनुग्रहसे भाष्यकार स्वामीने भिवानीके रहनेवाले तथा कलकत्ता-प्रवासी रायबहादुर बाबू विश्वेश्वर-लालजी हलवासियाको इस शुभ कार्यके करनेकी प्रेरणा की। उक्त रायबहादुर साहबने इस पुस्तकके प्रकाशनका सारा व्यय-भार अपने ऊपर लिया है और बिना मूल्य वितरण करनेका सङ्कल्प किया है। सग्रहकर्त्ताने पुस्तकका सर्वाधिकार रायबहादुर साहबके कनिष्ठ भ्राता चि० बाबू मोतीलालजीको सहर्ष दे दिया है।

जिस महानुभावकी निष्ठा अपने सम्प्रदायमें इतनी है, उसका संक्षिप्त परिचय भी देना हम आवश्यक समझते हैं।

जिन लोगोंका मारवाड़ी-समाजसे कुछ भी सम्बन्ध है, वे पंजाब अन्तर्गत भिवानीके हलवासिया-वंशको अवश्य ही जानते होंगे। इस वंशमें विद्वान्, धार्मिक एवं सदाचारी पुरुष सदासे होते चले आते हैं। रायबहादुर साहबके पितामह वैकुण्ठवासी सेठ यमुनादासजी परम अनन्य श्रीवैष्णव थे। आपका सम्बन्ध वृन्दावन श्रीरंग-मन्दिरके निर्माता श्रीरंग देशिक स्वामीसे था। भिवानी में जो श्रीरंगजीका मन्दिर है, उसमें जितने उत्सव होते थे, उन सबमें यमुनादासजी बड़ी श्रद्धाके साथ सम्मिलित होते थे। आपका भिवानीके सुप्रसिद्ध विद्वान् वासुदेवाचार्यसे बड़ा प्रेम था। भिवानीमें जितने श्रीवैष्णव जाते थे, उन सबको सेठ यमुनादासजीकी ओरसे अमनिया और बिदाईके समय एक रुपया मिलता था। आपकी ओरसे भूतपुरी तथा श्रीरंगम्में निजके भवन हैं, जिनमें क्षेत्र चलते थे। कहा जाता है कि आपके धनमें से रुपयेके पन्द्रह आने श्रीवैष्णव-कैङ्कर्यमें व्यय होते थे। आपका सौजन्य, भगवद्भक्ति और ब्रह्मण्यता उत्तरसे दक्षिण तक प्रसिद्ध थी। आप संस्कृत भी अच्छी तरह जानते थे और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और महाभारतका पाठ कण्ठस्थ किया करते थे। इनके पुत्र और रायबहादुर साहबके स्वर्गवासी पिता सेठ जानकीदासजी थे। सेठ जानकीदासजी दया और उदारताकी तो मानों प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे। आप दूसरोंको दुःखी तो कभी देख ही नहीं सकते थे। आपको भले ही कष्ट सहना पड़े, पर दूसरों को कष्टमें देखना आपके लिये असम्भव था। तन-मन-धनसे जैसे हो, वैसे दीन-दुखियोंके दुःखोंको दूर करना आपका व्रत-सा था। आप बड़े सुशील, उदार एवं पूरे व्यापारी थे। आप चालीस वर्षकी अवस्थामें हैदराबादमें पञ्चत्वको प्राप्त

हुए। सेठ यमुनादासजीके द्वितीय पुत्र श्रीयुत सेठ बलदेवदासजी आजकल कलकत्तेमें व्यापार करते हैं। आप एक धार्मिक और मिलनसार सज्जन हैं।

जिस समय रायबहादुरके पिता स्वर्गवासी हुए, उस समय रायबहादुर सेठ विश्वेश्वरलालजीकी अवस्था केवल १४ वर्षकी और उनके अनुज सेठ मोतीलाल-जीकी अवस्था पांच महीनेकी थी। चौदह वर्ष ही की अवस्थामें रायबहादुर अपनी जन्मभूमिसे सुदूर कलकत्ते गये। आपको हिन्दी, संस्कृत और अंगरेज़ीकी शिक्षा घर ही पर मिली।

आपने कलकत्तेमें पहुँचकर व्यवसायकी ओर मन लगाया। थोड़े ही दिनों बाद आपके अनुकरणीय उत्साह और अविश्रान्त परिश्रमपर लक्ष्मीजी प्रसन्न हुईं। देखते-देखते आप कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजके नेताओंमें गिने जाने लगे। आप जूट, चीनी, कपड़ा, निमक इत्यादिका व्यवसाय करते हैं और बेंक-टेश्वर हाइड्रालिक प्रेस तथा दौखिन्दरी केनेल बैंकके आप अध्यक्ष हैं। सरकार भी आपकी सार्वजनिक सेवाओंपर आपसे प्रसन्न है और आपको रायबहादुरकी पदवीसे अलङ्कृत भी कर रखा है। आप हावड़ेके जनरल हास्पिटल तथा गोबराके कोढी-अस्पतालकी कमेटियोंके सदस्य भी हैं। देहलीके दरबारके समय सरकारने आपको Durbar Medal दिया था। आपने हावड़ेमें अना-थोंके लिये अपने पिताके नामपर Janky Das Hospital नामक एक खैराती अस्पताल भी खोल रखा है। आपकी इस प्रकारकी अनेक सार्वजनिक सेवाओंपर प्रसन्न हो हमारे बड़े लाटने आपको Certificate of honour दिया है। इसके अतिरिक्त आप कलकत्तेकी प्रायः सभी मारवाड़ी-संस्थाओंके पोषक हैं। आप मारवाड़ी-स्पोर्टिङ्ग-क्लब तथा सनातन-धर्मावलम्बिनी अग्रवाल-सभाके प्रेसीडेंट हैं। आप ही के हाथसे 'कलकत्ता-समाचार'का प्रथम अङ्क

निकाला गया था और कलकत्तेके हिन्दू-क्लबको भी आपने ही खोला था। कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजकी प्रधान सभा मारवाड़ी-एसोसियेशनके भी आप ही प्रेसीडेंट हैं। आप हावड़ेके आनरेरी मजिस्ट्रेट भी हैं। अभी हाल ही में आप कलकत्तेमें श्री भागिरथीजीके तटपर अच्छी लागतसे एक सुन्दर श्राद्ध-घाट बनवा रहे हैं। इसके बन जानेपर सर्वसाधारणको बहुत सुभीता हो जायगा।

कहना न होगा कि रायबहादुर साहब भी श्रीवैष्णव सम्प्रदायमें पूरी निष्ठा रखते हैं। श्रीवैष्णव स्वभाव ही से दयावान् तथा ब्रह्मण्य और भगवत्-भागवत्-कैङ्कर्य-परायण हुआ करते हैं। आप सपरिवार दक्षिण-यात्रा भी कर चुके हैं। आप बड़े ही शान्त-प्रकृत-सम्पन्न, मिलनसार और मधुरभाषी हैं। आपका चरित्र-बल उच्च और विचार गम्भीर हैं। व्यवसाय-सम्बन्धी जटिल विषयोंपर आपकी सम्मति बड़े महत्वकी समझी जाती है। गवर्नमेंटमें आपकी बहुमूल्य सम्मतिका अच्छा आदर है।

हमें आपसे श्रीवैष्णव सम्प्रदायके प्रचार-सम्बन्धी कार्योंमें अनेक प्रकारकी सहायता मिलनेकी आशा है। हम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे रायबहादुर सेठ विश्वेश्वरलालजी हलवासिया एव उनके अनुज सेठ मोतीलालजी हलवासियाको दीर्घायु करें, जिससे ये दोनों महानुभाव श्रीवैष्णवोपकारी कार्योंमें सलग्न रहें।

दारागंज, प्रयाग,
कार्तिक कृष्णा, ७ मी
सं० १९७२

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

श्रीमान् सेठ मोतीलाल हलवासिया

॥ श्री ॥

विषय-सूची

—**—

अध्याय-संख्या	विषय		पृष्ठांक
१	श्रीरामानुजाचार्यका जन्म	..	१
२	यादवप्रकाश	..	१०
३	व्याध-दम्पती	..	१९
४	बन्धु समागम	.	२३
५	राजकुमारी	..	२७
६	श्रीकांचीपूर्ण	...	३५
७	श्रीआलवन्दार	.	३८
८	देह-दर्शन	...	४४
९	मन्त्र-रहस्य-दीक्षा	...	५१
१०	सन्यास	.	६०
११	यादवप्रकाशका शिष्य होना	.	६५
१२	श्रीरामानुजके भाई गोविन्दका श्रीवैष्णव होना	.	७३
१३	श्रीगोष्ठीपूर्ण	.	७७
१४	शिष्यो को शिक्षा-दान और स्वय शिक्षा-ग्रहण	..	८३
१५	श्रीरगनाथस्वामीके प्रधान सेवक	...	८९
१६	यज्ञमूर्त्ति	..	९५
१७	यज्ञेश और कार्पासाराम	.	१०१

१८	श्रीशैल-दर्शन और गोविन्द-समागम		१०९
१९	गोविन्दका सन्यास	..	११५
२०	श्रीभाष्यकी रचना	...	११९
२१	दिग्विजय	...	१२३
२२	कूरेश	...	१२६
२३	धनुर्दास	.	१३१
२४	कृमिकण्ठ	.	१४०
२५	विष्णुवर्द्धन	.	१४९
२६	यादवाद्रिपति	..	१५४
२७	कूरेश	..	१६१
२८	श्रीरामानुजके शिष्योंके अलौकिक गुण	...	१६४
२९	मूर्त्तिप्रतिष्ठा और तिरोभाव	...	१७१

—**—

भोगैश्वर्यपरा. केचित्केचित्कैवल्यमीप्सवः ।
वयन्तु श्रृङ्खला लग्ना रामानुजदयानिधे ॥

—ब्रह्मसंहिता

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

शेषावतार

श्रीरामानुजाचार्य

प्रथम अध्याय

—**—

श्रीरामानुजाचार्यका जन्म

मद्राससे साढे तीन योजन अर्थात् १४ कोस नैऋत्य कोणमे पेरुम्बूदूर नामक गाँव है । सस्कृत भाषामे इसको श्री महाभूतपुरी कहते हैं । वहाँ ब्राह्मणों ही की अधिक बस्ती है । गाँवके बीचमें सुन्दर और विशाल एक विष्णुका मन्दिर है । उस मन्दिरमें आदिकेशव नाम धारण करके त्रिलोक-रक्षक विष्णु, सस्मित-वदन होकर सबपर समान रूपसे कृपा-कटाक्षकी वर्षा करते हुए विराजते हैं । मन्दिरके चौककी दूसरी ओर एक देवगृह वर्त्तमान है । इसमे यतिराज भक्तवीर भक्तवत्सल वेदान्तकमलभास्कर भाष्यकार श्री मद्रामानुजाचार्य हाथ जोड़े भक्त-राजका आसन अधिकार किये हुए हैं । उसके पीछे निर्मल सलिल निस्तरग एक विशाल सरोवर पवित्र भक्त-हृदयके समान वैकुण्ठ-तुल्य उस समग्र देव-मन्दिरको धारण किये हुए है । इसके अतिरिक्त वहाँकी समस्त प्राकृतिक शोभा चित्तको प्रसन्न करती है । वह स्थान अनेक प्रकारकी वृक्ष-लताओसे सुशोभित

है, पक्षिकुलके मधुर कलरवसे मानो वह स्थान बोल रहा है, खिले हुए पुष्पोंके सौरभसे वह स्थान सुरभित हो रहा है। शान्ति, मधुरता और सुन्दरताकी वहाँ सीमा नहीं। देखनेसे मालूम होता है कि ससारकी रक्षामे निरन्तर लगे रहनेके कारण परिश्रम दूर करनेके लिये स्वय भगवान् कमलापति अपने प्रियतम भक्तके साथ विश्राम करनेके लिये आये हैं।

लगभग हज़ार वर्ष पहले आसूरि केशवाचार्य नामक एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण इस गाँवमे रहते थे। उसी समय यामुनाचार्य अथवा आलवन्दार राजसिहासन छोड़कर और राममिश्र स्वामीजीके शिष्य होकर श्री रगक्षेत्रमे सन्यासि-वेशमे रहते थे। गुरुको वैकुण्ठ-प्राप्ति होनेपर आलवन्दार ही उस समयकी समस्त वैष्णव-मण्डलीके नेता माने गये। उनका असाधारण वैराग्य, त्याग, पाण्डित्य, नम्रता, कर्मनिष्ठा आदि सभी गुण वैष्णव-मण्डलीके लिये अनुकरणीय हो गये। उनके बनाये सुमधुर स्तोत्रोको सभी सज्जन कण्ठस्थ और हृदयस्थ करके अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। वस्तुत महात्मा यामुनाचार्यने अपने बनाये स्तोत्रोंमें इस प्रकार भक्ति और प्रीतिके साथ सरल भावसे आत्मनिवेदन किया है, जिसे पढकर पाखण्डियोके हृदयमे भी भक्तिका सचार होता है। चारों ओरसे दलके दल भगवद्भक्तिपरायण वैष्णवगण आ-आकर उनके शिष्य होने लगे और अपनेको भाग्यवान् समझने लगे। उनमे दो-एक श्री यामुनाचार्यजीके समान सन्यासाश्रम ग्रहण करके उन्हींके साथ सर्वदा रहकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे।

पेरियातिरुमलैनम्बि यामुनाचार्यके प्रधान शिष्य थे। उनकी दो भगनियाँ थीं। बड़ीका नाम भूमिपेराट्टि भूदेवी अथवा कान्तिमती और छोटीका नाम पेरियापेराट्टि अथवा महादेवी था।

श्री पेरम्बूदूर-निवासी आसूरि केशवाचार्यने कान्तिमतीको ब्याहा था और कनिष्ठा महादेवीका ब्याह मधुरमङ्गलम्ग्राम-निवासी कमलनयन भट्टके साथ हुआ था। दोनों भगनियोंका ब्याह हो जानेपर श्री शैलपूर्ण निश्चिन्त होकर भगवान्का ध्यान करने लगे, और अन्तमे महात्मा यामुनाचार्यके समान सद्गुरु पाकर वृद्धावस्थामे उनके सत्सगसे परमानन्दका उपभोग करने लगे।

आसूरि केशवाचार्य अत्यन्त यज्ञनिष्ठ थे, इस कारण पण्डितोने उन्हें 'सर्वक्रतु' की उपाधि दी थी। अत उनका पूरा नाम श्री मदासूरि सर्वक्रतु केशव दीक्षित था। विवाहके अनन्तर दोनो स्त्री-पुरुष बहुत दिनों तक उसी गाँवमे रहे, परन्तु किसी सन्तानके न होनेके कारण केशव दीक्षितका चित्त बहुत उद्विग्न हुआ। अन्तमे यज्ञके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करके उनकी कृपासे पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा उनके हृदयमें बलवती हुई।

"यज्ञएवपरोधर्मो भगवत्प्रीतिकारक ।
अभीष्टकर्मधुग् यज्ञस्तस्मात् यज्ञ· परागति ॥"

आदि वाक्योंसे वह आशा हृदयमें और भी बद्धमूल हो गई। समुद्रके किनारे वृन्दारण्यके निवासी श्रीमत्पार्थसारथि भगवान्के समीप जाकर उन्होंने अपना मानसिक भाव निवेदन किया और वहीं यज्ञ करनेका सकल्प किया। तदनुसार वे स्त्रीके साथ वृन्दारण्यमे गये और वहाँ पार्थसारथिके समीपस्थ कुमुद सरोवरके तीरपर यज्ञ करना प्रारम्भ किया। आज हम लोग जिस स्थानको कहते हैं, वह तिरुवल्लिक्केणिका अगरेजी अपभ्र श है। पहले जो वृन्दारण्य नामसे प्रसिद्ध था, अब वह सरोवरके नामानुसार टिप्लीकेन कहा जाता है।

यज्ञ समाप्त होनेपर रात्रिमें केशवाचार्य सोए थे। उस समय उन्होंने स्वप्नमे पार्थसारथि भगवान्को देखा। स्वप्नमे भगवान्ने उन्हें सम्बोधित

करके कहा—"सर्वक्रतो ! मैं तुम्हारी सदाचारनिष्ठा और भक्तिसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। मैं ही तुम्हारे पुत्रके रूपमे जन्म ग्रहण करूँगा। मनुष्य दुर्बुद्धिके कारण पूर्वाचार्योंके अभिप्रायको न समझकर स्वय अपने ही को ईश्वर मानते हैं और अहकारके वशवर्ती होकर कुकर्मपरायण तथा यथेच्छाचारी हो रहे हैं। अत आचार्यरूपमे बिना मेरे अवतार लिये उनकी कोई गति नहीं है।" इस शुभ स्वप्नसे केशवाचार्य बड़े आनन्दित हुए। उन्होने यह शुभ समाचार अपनी स्त्रीको सुनाया, और दूसरे दिन प्रात काल ही वे स्त्री-सहित घर जानेके लिये वहाँसे प्रस्थित हुए।

इस घटनाके एक वर्षके बाद भाग्यवती कान्तिमतीने सर्वलक्षण-सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया। ४११८ कल्पाब्दमे, ९३९ शाकाब्दमे या १०१७ खृष्टाब्दमे, पिगल नामक सवत्सरमें, आर्द्रा नक्षत्र-युक्त चैत्र मासकी शुक्र पचमी तिथि, वृहस्पति वारको कर्कट लग्नमें, हारीत गोत्रीय यजु. शाखाध्यायी भगवान् श्री रामानुजाचार्य तरुण सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेके लिये सबके सामने उदित हुए। उनके जन्मसे दुर्बुद्धिका नाश हुआ और सद्बुद्धि विकसित हुई, इस कारण "धीर्लब्धा" इस वाक्य द्वारा पण्डितोंने उनका जन्म-काल निर्णय किया है। "अकस्य वामागति." इस नियमके अनुसार उक्त वाक्यमें ध, ल और ब—ये तीन प्रधान अक्षर हैं। कादि नव टादि नव और यादि नव—यह अक्षरमाला मिलकर एकसे नव सख्याका बोधन करती है। टादि नवके मध्यमे ध नवम स्थानीय है, इस कारण उससे नव सख्याका बोध होता है और यदि नवमे ल तृतीय स्थानीय है, इस कारण उससे तीसरी सख्याका बोध होता है। अतएव ब, ल और ध—इन तीन अक्षरोंसे ९३९ शाकाब्द समझा जाता है।

उसी समय कान्तिमतीकी छोटी बहिन महादेवीने भी एक पुत्र उत्पन्न किया। सूतिकागृहसे निकलनेके कुछ दिनोंके बाद वह अपनी बड़ी बहिनके पुत्रको देखनेकी इच्छासे उसके घर आई। दोनों बहिनें परस्पर पुत्रोंको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। इसी बीचमें इस शुभ समाचारको सुनकर श्री तिरुपतिसे वृद्ध श्री शैलपूर्ण स्वामी नवप्रसूत भागिनेयोंको देखनेके लिये वहाँ आये। बहुत दिनोंपर भाईको देखकर कान्तिमती और महादेवी बड़ी प्रसन्न हुईं। सर्वलक्षण-युक्त दोनों बालकोंको देख वृद्ध भी बहुत प्रसन्न हुए। कान्तिमतीके पुत्रमें अनेक दैवलक्षण देखकर उनको नम्मालवारकी कही हुई बात कि अमुक समयमें पेरुम्बूदूरमें आदि-शेषके अवतार होंगे, स्मरण हो आई। बृहत्पद्मपुराणके तेइसवें अध्याय और श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें कलियुगमें जिस अनन्तदेवकी कथा लिखी है, वह यही बालक ही लक्ष्मणावतार है—इस विषयमें उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं रह गया। इसी कारण उन्होंने उस बालकका नाम रखा "रामानुज" और महादेवीके पुत्रका नाम गोविन्द। महादेवीने एक और पुत्र उत्पन्न किया था, जिसका नाम छोटा गोविन्द रखा गया।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

"सार्पेजातौत्तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ।"

चैत्र मासके अश्लेषा नक्षत्रमें कर्कट राशिस्थ सूर्यमें लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे। श्रीमद्रामानुजाचार्यका जन्म मास और राशि लक्ष्मण और शत्रुघ्नके जन्मकालसे मिलता है। जब दोनों बालक चार महीनेके हो गये, तब उनकी माताएँ बालकोंको लेकर बाहर निकलीं और उन लोगोंने बालकोंको सूर्यका दर्शन कराया। तदनन्तर यथासमय उनका अन्नप्राशन, कर्णवेध,

चूड़ाकरण, विद्यारम्भ और उपनयन-कर्म सम्पन्न हुआ। बाल्यावस्था ही से रामानुजने अपनी असाधारण बुद्धिशक्तिका परिचय दिया था। अध्यापकके एक बार कहने ही से, चाहे वह कितना ही कठिन पाठ क्यों न हो, वे उसे समझ लेते थे। इस कारण समस्त अध्यापक उनपर अधिक स्नेह रखते थे।

उनकी बुद्धि केवल बाहरी बातोंमे प्रखर थी—ऐसा नही था, उनकी बुद्धि दिग्दर्शक-यन्त्रकी सूईके समान दक्षिण-उत्तर रूप धर्म और अर्थ दोनोको समभावसे बतला दिया करती थी। धर्मका अनुशीलन और धार्मिकोका सहवास उन्हे अत्यन्त प्रिय था। समय पाते ही वे साधु-सगके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे।

उसी समय काचीपूर्ण स्वामी नामक एक परम भागवत पूविरुद्वल्लिमे रहते थे और वे वहाँके प्रधान रत्न समझे जाते थे। वे प्रतिदिन वहाँसे देवपूजा करनेके अर्थ काचीसे जाते थे। श्री पेरुम्बूदूर इन दोनों स्थानोंके बीचमे था। अत वे प्रतिदिन श्री रामानुजाचार्यके मकानके पाससे होकर आते जाते थे। यद्यपि वे तीसरी जातिके थे, तथापि उनका प्रगाढ़ ईश्वरानुराग देखकर ब्राह्मण भी उनकी उचित श्रद्धा और भक्ति करते थे। एक दिन सन्ध्याके समय श्री रामानुज अध्यापकके घरसे आते थे, मार्गमें सहसा श्री काचीपूर्णसे भेंट हो गई। भागवतोत्तमके मुखकी दिव्यकान्ति देखकर श्री रामानुजका चित्त उधर आकृष्ट हुआ। उन्होने अति विनीत भावसे उस रात्रिको अपने घर अन्न-ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। श्री काचीपूर्ण स्वामीने भी बालककी दिव्यकान्ति और भगवल्लक्षण देखकर आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। इससे श्री रामानुज बड़े प्रसन्न हुए। उनको बड़े उत्साह और प्रीतिसे श्री रामानुजने भोजन कराया। तदनन्तर वे उनके पैर दबानेके लिए उद्यत

हुए, परन्तु अतिथिने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—"मैं नीच वर्ण हूँ, आप ब्राह्मण और परम वैष्णव हैं। मुझे चाहिये कि मैं आपकी सेवा करूँ, परन्तु आप मेरी ही सेवाके लिए उद्यत होते हैं, यह उचित नहीं है।" इससे दु खित होकर श्री रामानुजने कहा—"मेरा भाग्य ही मन्द है, इसी कारण आप जैसे महात्माका सेवाधिकार नहीं मिला। महाशय! उपवीत धारण करने ही से क्या कोई ब्राह्मण होता है? जो हरिभक्त हैं, वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं। देखिये, तिरुप्पान आल्वार चाण्डाल थे, परन्तु वे ब्राह्मणोंके पूज्य हो गये।"

बालककी इस प्रकारकी भक्ति देखकर श्री काचीपूर्ण स्वामी उस बालकको मनुष्य नहीं समझ सके। अनेक प्रकारके वार्तालापसे रात्रिको विश्राम करके दूसरे दिन प्रात काल श्री काचीपूर्ण अपने घर गये। उसी दिनसे दोनोंमे परस्पर प्रेम-बन्धन चिर-दिनके लिए स्थापित हुआ।

पूर्वाचार्योंने श्री रामानुजको लक्ष्मणावतार लिखा है। इसमें उन्होंने पुराणोके अनेक प्रमाण दिये हैं, यह बात पहले दिखलाई गई है। सौमित्रिके स्वभावके साथ केशवनन्दनके स्वभावकी तुलना करनेसे हम लोग दोनोंमे अधिक सादृश्य देखते हैं। लक्ष्मीवर्द्धन लक्ष्मणकी कर्तव्यपरायणता, सत्यनिष्ठा, रामभक्ति, जितेन्द्रियता और धर्मपरायणता ससारमे अतुलनीय है। उनके हृदयके अधिष्ठाता देव केवल श्रीराम ही थे। रामरसके अतिरिक्त दूसरे रसमे लक्ष्मणकी आस्था ही नहीं थी। सुतरा पार्थिव प्रलोभनोसे वे अलग ही रहेंगे, इसमे आश्चर्य ही क्या है। हम लोग इसके अनेक प्रमाण "वाल्मीकिगिरि सम्भूता रामसागरगामिनी" रामायणी गगामें अवगाहन करनेसे प्राप्त करते हैं। जिस समय मायामृगने रमणी-कुलकी गौरव-स्वरूपा जनकनन्दिनीको

मोहित करके सर्वकल्याण गुण-समन्वित भगवान् श्रीरामचन्द्रको मोहित किया था, उस समय श्रीमान् लक्ष्मणने अपने हृदयके अभीष्टदेव श्रीरामचन्द्रको इस प्रकार सावधान किया था—

"तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ।
चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने ॥
अनेन निहता राम राजानः पापरूपिणा ।
अस्य मायाविदोमाया मृगरूपमिदं कृतम् ॥
भानुमत् पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसन्निभम् ।
मृगोह्येवविधोरत्न विचित्रो नास्तिराघव ॥
जगत्या जगतीनाथ मायैषाहि न संशय ।"

हे पुरुषव्याघ्र ! मैं समझता हूँ कि यह मृग मारीच राक्षसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। राजा लोग प्रसन्नतासे जब वनमे मृगया खेलने जाते हैं, तब पापी दुष्ट यह निशाचर मायासे अनेक रूप धारण करके उन्हे मोहित करके विनष्ट कर देता है। यह जो सामने गन्धर्व नगरके समान सुन्दर मायामृग दीख पड़ता है, यह मायावीकी मायासे भिन्न और कुछ नहीं है। हे जगतीपते श्रीरामचन्द्र ! पृथ्वीमे ऐसा काचन मृग कहीं नहीं देखा गया है, अत यह माया है, इसमे कोई सन्देह नहीं।

सीताके साथ श्रीरामचन्द्रकी सेवा करना ही लक्ष्मणके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। रावण वधके अनन्तर देवताओके साथ महाराज दशरथ आकर लक्ष्मणको आशीर्वाद दे तथा उनकी प्रशसा करके कहते हैं—

"अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलत्वया ।
एवं शुश्रुषताव्यग्र वैदेह्या सह सीतया ॥"

हे वत्स ! वैदेही सीताके साथ श्रीरामचन्द्रकी अव्यग्र चित्तसे सेवा करते हुए तुम्हे धर्म और विपुल यश प्राप्त हुआ है ।

श्री रामानुजके जीवनका भी मुख्य उद्देश्य श्री नारायणकी सेवा करना था। जिस समय तामसिक समाजके नेताओने अहकारसे उन्मत्त होकर—रावण द्वारा सीता-हरणके समान—मानव-हृदयसे भगवद्भक्तिका अपहरण किया था, उस समय श्री रामानुज सच्चे रामानुजके समान सीतारूप भगवद्भक्तिके उद्धारके लिये आजीवन पाखण्डियोंके साथ युद्ध करके अन्तमे सफल मनोरथ हुए थे । उन्होंने श्रीनारायणके अकमे श्रीको बैठाकर श्रीहीन भारतमे पुन सौभाग्यलक्ष्मी प्रकाशित कर दी। श्रीके साथ श्रीनारायणका नित्य सम्बन्ध स्थापित करके उन्होंने महर्षि वाल्मीकिके अभिप्राय ही को व्यक्त किया है। आदि कविने वन्दीके मुखसे गवाया है—

"श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्य प्रतिष्ठितौ।"

हे काकुत्स्थ ! धर्म और श्री तुममें नित्य वर्त्तमान रहते हैं। श्री सम्प्रदायके प्रवर्त्तक महात्माने असाधारण बुद्धि-बलसे और अनवद्य युक्तिके सहारे इसी तत्वको स्पष्टरूपसे समझाया है। लक्ष्मण जिस प्रकार मूर्त्तिमान् धर्म-स्वरूप थे, उसी प्रकार श्री रामानुज धर्मके प्राण थे, यह बात उनकी जीवन-घटनाओंपर विचार करनेसे स्पष्ट ही विदित होती है। लक्ष्मणके समान श्री रामानुज भी नीति और पार्थिव प्रलोभनोंसे दूर थे ।

—**—

द्वितीय अध्याय

यादवप्रकाश

सर्वलक्षण-सम्पन्न श्री रामानुजने सोलह वर्षकी अवस्थामें पैर रखा है, यह देखकर उनके पिता आसूरि केशवाचार्यने पुत्रका ब्याह निश्चित किया। शीघ्र ही एक सुन्दरी कन्याके साथ उनका ब्याह हुआ। पिता-माता, आत्मीय-स्वजन-सम्बन्धियोंके आनन्दकी सीमा नही रही। दीन-दरिद्र भोजन पाकर बडे आनन्दित हुए। एक सप्ताह तक आनन्दकी धारा बहती रही। नई बहूको देखकर देवी कान्तिमती और उनके पति बड़े आह्लादित हुए। महीनों इसी प्रकार सासारिक आनन्दमे बीता। इसी समय विधाताके पुराने नियमके अनुसार सुखमे दु खकी रेखा दीख पड़ी। वृद्ध केशवाचार्य साघातिक पीड़ासे पीड़ित हुए और शीघ्र ही वे इस धराधामसे उठ गये। आचार्य-परिवार मेघाच्छन्न पूर्णिमा रजनीके समान शोकसे म्लान हो गया। विपुल आनन्दके बीचमें यह आकस्मिक दु ख अतिशय तीव्र हो उठा। कविकुलगुरु वाल्मीकिकी मर्म जलानेवाली क्रौंचवधूके समान कान्तिमती अतिशय अधीर हो गई। पितृहीन श्री रामानुज कियत्काल-पर्यन्त शोकसे अधीर हो गये। धीरे-धीरे बुद्धि-बलसे वे प्रकृतिस्थ होनेका प्रयत्न करने लगे। वे स्वय प्रकृतिस्थ होकर माताको भी सान्त्वना देने लगे।

शीघ्र ही बन्धुओंकी सहायतासे पिताकी अन्त्येष्टि-क्रियासे वे निवृत्त हुए।

यथासमय श्राद्ध आदि क्रिया सम्पन्न हुई। तदनन्तर कुछ दिनों तक वे वहीं रहे, परन्तु अब वह स्थान उनको रुचिकर प्रतीत नहीं होता था, अत उन्होंने काचीपुरमे जाकर रहनेका विचार निश्चित किया। तदनुसार उन्होंने काचीपुमे रहनेको मकान बनवाया, और वहाँ सपरिवार जाकर वे रहने लगे। अधिक समय बीतनेसे शोकावेग भी घट गया।

उस समय काचीपुरमे यादवप्रकाश नामक एक विख्यात अद्वैतवादी अध्यापक अनेक शिष्योंके साथ रहते थे। उनके पाण्डित्यपर सभी मुग्ध हो गये थे। अधिक ज्ञान-पिपासा होनेके कारण श्री रामानुज भी उनके शिष्य हो गये। नवीन शिष्यकी प्रतिभा देखकर यादवप्रकाश बड़े ही प्रसन्न हुए। थोड़े ही दिनोमे श्री रामानुज यादवप्रकाशके सर्वप्रधान अत्यन्त प्रिय शिष्य हो गये।

परन्तु यह प्रीति बहुत दिनों तक रह न सकी। यादवप्रकाश एक अद्वितीय बुद्धिमान् मनुष्य थे। आज भी उनका कहा हुआ अद्वैत सिद्धान्त "यादवीय सिद्धान्त" के नामसे प्रसिद्ध है। वे एक प्रकारसे शुद्धाद्वैतवादी थे, परन्तु वे ईश्वरकी साकार मूर्त्ति नहीं मानते थे। जगत् ईश्वरकी परिवर्त्तनशील नित्यनश्वर विराट् मूर्ति है। इसी विराट् मूर्त्तिके पश्चात् जो देश-काल-निमित्तातीत अक्षर सच्चिदानन्द सत्ता है, वही स्वराट् सत्ता है, वही उपादेय और ज्ञेय है। पूज्यपाद शकराचार्यके समान वे विराट्मे मायाका अथवा रज्जुमें सर्पका विवर्त, एकमे अन्यज्ञान, ऐसा नहीं कहते। जगत् उनकी दृष्टिसे मरीचिकाके समान मिथ्या और सब प्रकारसे अकिंचितकर प्रतिभात नहीं होता। यह ईश्वर ही का एक रूप है, जो नित्य और परिवर्त्तनशील है। सतत चचल होनेके कारण हेय है और सतत स्थिर है। इस

कारण स्वराट् उपादेय है। विराट्दर्शी आत्मा जीव और स्वराट् आत्मा ही ब्रह्म है।

भक्तिमय मूर्त्ति श्री रामानुज भगवद्दास्यकी दूसरी मूर्त्ति थे। इस कारण यादवीय सिद्धान्त कभी वे पसन्द नहीं कर सकते थे। परतु गुरुका गौरव रखनेके लिये उन्होने कभी यादवकी शिक्षाका दोष दिखानेका साहस नहीं किया। इच्छा रहनेपर भी वे गुरुके सिद्धान्तके दोष दिखानेका साहस नहीं कर सके थे।

एक दिन प्रात कालका पाठ समाप्त होनेपर शिष्यवर्ग मध्याह्नकी क्रिया करनेके लिये अपने-अपने घर चले गये। उस समय यादवप्रकाशने अपने प्रियतम शिष्य श्री रामानुजको तेल लगानेके लिये कहा। उस समय भी एक छात्र पढ रहा था। वह छान्दोग्योपनिषत् पढता था। उसके प्रथमाध्यायस्थ षष्ठ खण्डके सप्तम मन्त्रके पूर्वाशमे जो "कप्यास" शब्द है, उसका अर्थ वह

पुण्डरीकमेवमक्षिणी"। यादवप्रकाशने "कप्यास" शब्दका अर्थ वानरके पृष्ठका अन्तिम भाग अथवा वानरका अपान देश करके उस मन्त्रांशकी ऐसी व्याख्या की—"उस सुवर्ण वर्ण पुरुषकी दोनो आँखे वानरके पृष्ठके अन्तिम भागके समान लाल और पद्मतुल्य हैं।" इस विसदृश और हीनोपमायुक्त व्याख्याको सुनकर तेल लगाते हुए श्री रामानुजका स्वभाव-कोमल और भक्ति-मधुर हृदय पिघल गया और अश्रुका आकार धारण करके आँखोंके कोनोंसे निकलकर यादवप्रकाशके शरीरपर पड़ा। जलते हुए अगारके तुल्य अश्रुधारा पड़नेमे यादवप्रकाश चकित होकर ऊपर देखने लगे। उस समय उन्हे मालूम हुआ, यह अंगार नहीं, किन्तु उनके प्रिय शिष्य श्रीरामानुजकी अश्रुधारा

है। उन्होंने विस्मित होकर श्रीरामानुजसे इसका कारण पूछा, तो उत्तर मिला—"भगवान्, आपके समान महानुभावसे इस प्रकारके अर्थ सुनकर मैं बड़ा मर्माहत हुआ हूँ। सर्वकल्याणमय निखिल सौन्दर्योंका आकार, सच्चिदानन्दमय विग्रह परात्पर भगवानके मुखके सहित वानरके अपान देशकी तुलना करना कितना अन्याय और पापजनक है, सो मैं एक मुखसे क्या कहूँ। आपके समान बुद्धिमानके मुखसे ऐसा अनर्थ सुननेकी आशा नहीं थी। यादवप्रकाशने कहा—"वत्स! मैं भी तुम्हारी दाम्भिकतासे अधिक दुःखित हुआ हूँ। अच्छा, इसका इससे अधिक उत्तम अर्थ तुम कर सकते हो?" श्री रामानुजने कहा-"आपके आशीर्वादसे सभी सम्भव हो सकता है।" गुरुने ईषत् घृणासूचक हास्य करके कहा—"ठीक है, ठीक है, तुम अपना नया अर्थ कहो। देखते हैं, तुम शंकराचार्यके सिरपर पैर रखना चाहते हो।" श्री रामानुजने अति विनयसे कहा—"भगवन्, आपके आशीर्वादसे सभी हो सकता है। 'कप्यास' शब्दका अर्थ वानरका अपान मार्ग नहीं है, किन्तु 'क जल पिवतीत कपि सूर्य एवं विकसनार्थक अस् धातुसे आस' शब्द सिद्ध होता है। इससे 'कप्यास' शब्दका अर्थ हुआ 'सूर्य विकसित'। इस प्रकार मन्त्रांशका अर्थ हुआ—उस सुवर्ण वर्ण सवितृमण्डल मध्यवर्त्ती पुरुषकी आँखें सूर्यविकसित पद्मके समान शोभाशालिनी हैं।"

यह अर्थ सुनकर यादवने कहा—"यह मुख्यार्थ नहीं है, किन्तु गौणार्थ है। जो हो, अर्थ करनेकी तुम्हारी शक्ति अच्छी है।"

इसके बाद अध्यापकने श्री रामानुजको महाद्वैतवादी एक भगवद्भक्त समझा और इसी कारण उनकी प्रीति भी कुछ कम हो गई।

एक दिन तैत्तिरीय उपनिषद्के "सत्य ज्ञान मनन्त ब्रह्म" इस मन्त्रकी जब

यादवप्रकाशने ब्रह्मको असत्यव्यावृत्त, अज्ञानव्यावृत्त और परिच्छिन्नव्यावृत्त कहकर व्याख्या की, तब श्री रामानुज उसका प्रतिवाद करनेके लिये उद्यत हुए और उन्होंने कहा--"ब्रह्म सत्य स्वरूप हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं और वे अनन्त हैं, अर्थात् वे सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व आदि गुणोसे गुणी हैं। ये गुण उनके स्वरूप-मात्र नही हो सकते। ये सब भगवान्के गुण हैं।" इस व्याख्याको सुनकर अध्यापक गरम तेलमे भुने हुए बैंगनके समान लहक उठे। उन्होंने कहा--"अरे धृष्ट बालक! तू यदि हमारी व्याख्या नहीं सुनना चाहता, तो व्यर्थ यहाँ क्यो आया है? अपने घर जाकर पाठशालामे क्यों नहीं पढ़ता?" तदनन्तर पुन अध्यापकने स्थिर होकर कहा--"तेरी व्याख्या शकराचार्यके मतानुकूल नहीं है और अन्य किसी पूर्वाचार्यके भी मतानुकूल नहीं है। अत अबसे फिर ऐसी धृष्टता न करना।" श्री रामानुज स्वभाव ही से अधिक नम्र और गुरुभक्त थे। पाठके समय वे मौन धारण करके रहने लगे। प्रतिवाद करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं थी, परन्तु करते क्या? जब अध्यापककी व्याख्यामे वे सत्यका अपलाप होते देखते थे, तब उनका हृदय काँप जाता था और इच्छा न रहनेपर भी उनको उसका प्रतिवाद करना ही पड़ता था। यादव यद्यपि उनके प्रतिवादोको अपनी शिष्यमण्डलीमे नि सार ठहरा देते थे, तथापि वे धीरे-धीरे श्री रामानुजसे भय करने लगे। उन्होने सोचा--सम्भव है, यह बालक समय पाकर अद्वैत मतका खण्डन करके द्वैत मतकी स्थापना करे। किस प्रकार इससे छुटकारा मिलेगा। सनातन अद्वैत मतकी रक्षाके लिये इसका प्राणसहार करना भी उचित है। यादवप्रकाशने अद्वैत मतपर अधिक भक्तिके कारण ऐसा पाशव सिद्धान्त स्थिर नहीं किया, किन्तु प्रबल ईर्ष्या ही इसका कारण है। कवि कहता है--

"प्रकृति खलु सा महोयसा सहते नान्य समुन्नति यया ।
अनहुङ्कुरुते घनध्वनि नहिगोमायूरुतानि केशरी ।"

दूसरोंकी उन्नति सहना ही महात्माओंका स्वभाव है, क्योंकि सिह मेघ गर्जन ही को सुनकर नाद करता है, शृगालके शब्दको सुनकर नही। यह लक्षण प्रकृत महात्माओंका नहीं है। वे महात्मा "तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनिसन्तुष्टो येन केन चित्" होते हैं। उनका न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र। वे सबका कल्याण ही चाहते हैं। वे नित्य सन्तुष्ट और सर्वत पूर्ण होते है। कविने लौकिक महात्माओंका लक्षण बतलाया है। जिसको हम लोग "बडा आदमी" कहते हैं, वे तमोगुणसे मोहित होकर "कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम" समझते हैं। यादवप्रकाश भी ऐसे ही बड़े आदमी थे। अत ईर्ष्याके वशवर्त्ती उनका हृदय श्री रामानुजके वधकी कामना करेगा, इसमे आश्चर्य क्या है? यद्यपि असाधारण बुद्धिकी सहायतासे उन्होने वेदान्तके कठिन तर्कोंको अधीन कर लिया था, यद्यपि वे "ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है" इस तत्वको सबके सामने स्पष्टरूपसे प्रमाणित कर सकते थे, यद्यपि उनकी कीर्त्ति काचीपुरीमे व्याप्त हो गई थी और यद्यपि उनकी शिष्यमण्डली उन्हे शकरावतार समझती थी, तथापि साधनहीन होनेके कारण उनका ज्ञान केवल वाचिक था। वे वासनाओकी दासतासे अपना उद्धार नहीं कर सकते थे।

एक दिन एकान्तमे यादवने अपने शिष्योंको बुलाकर कहा—"देखो तुम लोग तो हमारी व्याख्यामे किसी प्रकारके दोष नहीं देखते, परन्तु वह धृष्ट रामानुज जब देखो, तभी हमारी व्याख्यामें दोष दिखाया करता है। बुद्धिमान् होनेसे क्या हुआ, उसका मन द्वैतरूप पाखण्डसे परिपूर्ण है। इस पाखण्डसे बचनेका उपाय क्या है?" यह सुनकर एक शिष्य बोल उठा, "उसको

महाराज अपने यहाँ आने न दीजिये।" इसी समय एक दूसरा शिष्य बोल उठा, "इससे क्या होगा? जिसका डर है, उसका तो कोई उपाय हुआ ही नहीं, अपने यहाँ न आने देनेसे रामानुज एक पाठशाला खोलकर द्वैत मतका प्रचार करेगा। क्या तुमने सुना नहीं कि 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' इसकी एक बृहत् व्याख्याकर रामानुजने अद्वैत मतका खण्डन किया है?" सचमुच श्री रामानुजने "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म" की एक बृहत् व्याख्या की थी, जिससे पण्डितोंमें उनका बड़ा आदर होने लगा था। कुछ देरके वादानुवादके पश्चात् यह स्थिर हुआ कि श्री रामानुजके वधके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। इसके निश्चत होनेपर किस प्रकार यह काम अनायास और बिना किसी के जाने सिद्ध होगा, इस बातकी मीमासा होने लगी। अन्तमे यादवने कहा—"चलो, हम लोग गगास्नानसे पाप दूर करनेके लिये तीर्थयात्राको चलें। तुम सब मिल्कर यह बात श्री रामानुजको जना दो, और वह भी तीर्थयात्रामें हम लोगोके साथ चले, इसके लिये प्रयत्न करो। क्योंकि तीर्थ-यात्राका और कुछ उद्देश्य नहीं है, केवल उस पाखण्डीका नाश करना ही है। मार्गमे उसका वध करके गगास्नानके द्वारा हम लोग ब्रह्महत्याका दोष भी छुडा लेगे और अद्वैत मतका कण्टक भी सदाके लिये उखड़ जायगा।

शिष्यगण अध्यापकका ऐसा साधूक्तिपूर्ण परामर्श सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और वे श्री रामानुजको तीर्थयात्राका प्रलोभन देनेको चले।

पहले लिखा गया है कि गोविन्द नामक श्री रामानुजका एक मौसेरा भाई था। वह श्री रामानुजको अपने प्राणोसे भी अधिक समझता था। पेरुम्बूदूरको छोड़कर आचार्य-परिवारने जिस समय काञ्चीपुरीमे वास किया, उसी समय गोविन्द भी उनके साथ आकर रहने लगा था। श्री रामानुज और गोविन्द दोनों

ही सम अवस्थाके थे । अत श्री रामानुजने जिस समय यादवप्रकाशका शिष्यत्व ग्रहण किया, समय गोविन्द भी उनका शिष्य बना। दोनो प्राय· एक ही साथ पढ़ते थे और साथ ही गुरुगृहसे लौटते थे। यादवके शिष्योने श्रीरामानुजको गङ्गास्नान करनेके लिये उद्यत कराया, अत गोविन्द भी बड़े आग्रहसे उनके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमे यादवप्रकाशके साथ उनकी शिष्यमण्डली तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे आर्यावर्तकी ओर प्रस्थित हुई। पुत्र-विरह यद्यपि असह्य था, तथापि धर्मशीला कान्तिमतीने अपने पुत्रके इस सत्कर्मानुष्ठानमे बाधा देना उचित नहीं समझा। कतिपय दिनोंके अनन्तर शिष्यमण्डलीके साथ यादव विन्ध्याचलके समीपस्थ गोंडारण्यमे उपस्थित हुए। सरलचेता श्री रामानुज इस भयङ्कर षड्यन्त्रका विन्दुविसर्ग भी नहीं जानते थे, परन्तु गोविन्दको इस बातकी खबर मिल गई। पवित्र मनुष्य सभीको पवित्र ही समझते हैं। एक दिन श्री रामानुज और गोविन्द दोनो रास्तेके पासके किसी तालाबपर पैर धोने गये थे। उसी समय एकान्त पाकर गोविन्दने श्री रामानुजसे सब बातें कह दीं और पिशाच-स्वभाव इन नराधमोने तीर्थयात्राके व्याजसे उनको मारनेके लिये सङ्कल्प किया है, यह भी गोविन्दने उन्हे समझाया तथा कहा—"ये राक्षस तुम्हें मार डालेंगे, अत तुम यहाँसे लौटकर कहीं छिप रहो।" यह कहकर गोविन्द उनके अन्य शिष्योके साथ मिल गया। यादवप्रकाशने श्री रामानुजको ढुँढवाकर देखा कि वे उस शिष्यमण्डलीमे नहीं हैं, तब उन्होंने उनको ढूँढ़नेके लिये चारो ओर मनुष्य भेजे, परन्तु उस विजन वृक्षसमाकीर्ण वनमें श्री रामानुजका कहीं पता नहीं लगा। यादवके शिष्योंने उनका नामोच्चारण करके ज़ोर-ज़ोरसे पुकारा, परन्तु कहींसे कुछ भी उत्तर नहीं आया। अन्तमे श्री रामानुजको किसी

बनैले जन्तुने मार डाला है, यह समझकर सभी प्रसन्न हुए। गोविन्द उनका आत्मीय था, इस कारण उन लोगोंने केवल बाहरसे थोड़ा दुःख प्रकाशित किया। तत्वज्ञानके उपदेश द्वारा यादव शिष्यमण्डलीको जीवनकी निःसारता समझाने लगे और कोई किसीका नहीं है, यह कहकर गोविन्दको ढाढस बँधाने लगे। मत्सरता मनुष्योंको पशुसे भी अधम बना देती है, इसका उदाहरण अध्यापक यादवप्रकाशसे बढ़कर दूसरा कौन हो सकता है।

तृतीय अध्याय

व्याध-दम्पती

गोविन्दसे पूर्वोक्त कलेजा कपानेवाली भयङ्कर अशुभ बात सुनकर श्री रामानुज थोड़ी देरके लिये किकर्तव्यविमूढ हो गये। उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा, उनका प्रिय मित्र गोविन्द भी उन्हें छोड़कर दौड़ा हुआ यादवकी शिष्यमण्डलीमें मिलनेके लिये जा रहा है। उस समय दिन बाकी था। अट्ठारह वर्षका युवक उस निर्जन वनमें सहायहीन, बान्धवहीन होकर क्या करता? उन्होंने सोचा, गोविन्दको बुलाऊँ, पुन सोचा कि ऐसा करनेसे यादवके अन्य शिष्य भी जान लेंगे। श्री रामानुजको छोड़कर गोविन्दके जानेका भी यही कारण था। धीरे-धीरे गोविन्द भी वृक्षोंकी ओटमे छिप गया। उसी समय एक अलौकिक बलसे उनकी इन्द्रियाँ बलवती हो गई और भीतरसे मानो कोई कहने लगा, डर क्या है, नारायण रक्षक हैं। बहुत शीघ्र राक्षस-स्वभाव सहपाठियोंसे रक्षा पानेके लिये मार्ग छोड़कर श्रीरामानुज सघन वनमें घुसे। वे बराबर दोपहर तक चलते ही गये। एक बार भी फिरकर उन्होंने पीछेकी ओर न देखा। उन्हे मालूम पड़ा, कोई पीछेसे बड़े ज़ोरसे उन्हें पुकार रहा है। पुकार सुनकर वे और भी ज़ोरसे आगेकी ओर बढे। अन्तमे भूख-प्यास और थकावटके कारण आगे नही बढ़ सके और वहीं एक

वृक्षके नीचे बैठ गये। उनकी बैठनेकी भी शक्ति जाती रही थी। इस कारण वे वहीं सो गये और सोते ही उन्हे निद्रा आ गई। कुछ देरके लिये उनका ससारके दु ख-सुखसे पीछा छुटा। उठकर उन्होंने देखा कि सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे हैं, दिन बहुत ढल चुका है, परन्तु न मालूम उनकी भूख-प्यास कहाँ चली गई। अपनेको अधिक बलवान् और स्वस्थ देखकर वे त्रिता-पहारी भगवान्को अनेक धन्यवाद देने लगे। हाथ-मुँह धोकर किधर जायँ, वे यही सोच रहे थे कि उनके सामने एक व्याध-दम्पती दीख पड़े। उनके समीप जाकर व्याधकी स्त्रीने पूछा—"बेटा, रास्ता भूलकर तुम कहाँ इस वीरान जङ्गलमे आ पड़े हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारा घर कहाँ है ?" श्री रामानुजने कहा—"हमारा घर यहाँसे बहुत दूर है। दक्षिण देशकी काञ्चीपुरीका नाम सुना है, वहीं मेरा घर है।" यह सुनकर व्याधने कहा—"इस चोर-डकैतोंके भयङ्कर वनमे तुम कैसे आये ? यहाँ दिनमे भी आनेका साहस कोई नहीं करता। इसके अतिरिक्त यहाँ हिंस्र जन्तु भी निर्भय होकर विचरण करते हैं। हम काञ्चीपुरी जानते हैं। हम लोग भी उधर ही जा रहे हैं। तुमको असहाय देख-कर तुम्हारा पता पूछनेके लिये इधर चले आये हैं।" श्री रामानुजने कहा—"तुम लोग रहनेवाले कहाँके हो, और काञ्चीपुरी क्यो जाते हो ?" व्याधने कहा—"हम लोग सिद्धाश्रमके रहनेवाले हैं। समस्त जीवन व्याध-व्यवसायसे हमने बिताया है। अब पारलौकिक कल्याणके लिये तीर्थ-दर्शनके लिये हम और हमारी यह स्त्री दोनो निकले हैं। काञ्ची होकर हम लोग सेतु जायँगे। अच्छा हुआ, तुम्हारे जैसे सत्पुरुषका सङ्ग हुआ है। मालूम पड़ता है, तुम रास्ता भूल गये हो। खैर, कुछ डरकी बात नहीं है। जगत्पालक परमात्माने तुम्हारी रक्षाके लिये ही मानों हम लोगोको यहाँ भेजा है।" उस व्याधका भयङ्कर रूप देखकर श्रीरामा-

नुज पहले तो कुछ डर गये थे , परन्तु उस व्याधके मुखपर एक प्रकारकी स्नेह-युक्त गम्भीरतासे, उसकी मधुर और मनोहर बातोंसे तथा उसकी स्त्रीके सरल सम्भाषणसे उनके हृदयके सभी सशय दूर हो गए और वे उनके साथ चलनेके लिए उद्यत हो गए। उस समय अधिक दिन नहीं रहा। व्याधने कहा – "चलो, जल्दी-जल्दी हम लोग इस वनको पार कर दें।" थोड़ी देरके बाद दोनो वन पार कर एक स्थानपर पहुँचे। लकड़ी लाकर व्याधने वहाँ आग जला दी और उसीके पास थोड़ी भूमि समतल करके उसपर श्री रामानुजको विश्राम करनेके लिए कहा तथा वह स्वय भी दूसरी ओर अपनी स्त्रीके साथ विश्राम करने लगा। व्याधकी स्त्रीने अपने पतिको सम्बोधित करके कहा—"मुझे बड़ी प्यास लगी है। यहाँ कहीं जल मिलेगा, इसका पता लग सकता तो बड़ी अच्छी बात होती।" व्याधने कहा—"इस समय रात हो गई है। इस समय इस स्थानको छोड़ना उचित नहीं है। यहाँसे थोड़ी दूरपर एक बावड़ी है, कल प्रात काल ही इसीके निर्मल जलसे प्यास बुझाना।" व्याधकी स्त्री अच्छा कहकर सो गई।

दूसरे दिन प्रात काल ही उठ और प्रात कृत्य करके श्री रामानुज व्याधके साथ चले। थोड़ी देर चलनेपर वे उस बावड़ीके पास पहुँचे। श्री रामानुजने हाथ-पैर धोकर जल पीया। एक अञ्जली जल ऊपर लाकर व्याधकी स्त्रीको पिलाया, परन्तु तो भी उसकी प्यास नहीं गई, अत चौथी बार जल लेनेके लिए वे फिर गए। जब वे ऊपर आए, तब न तो व्याध ही वहाँ था और न उसकी स्त्री ही। इधर-उधर उन्होने देखा, परन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा। पलक झपते ही न मालूम वे कहाँ अदृश्य हो गए। इसका कारण श्री रामानुज कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। उन्होने सोचा, ये देवता थे, मनुष्य नहीं। लक्ष्मीनारा-यणने ही व्याध-दम्पतीका रूप धारण करके हमारी रक्षा की है। वहाँसे थोड़ी दूर

पर मन्दिरका शिखर तथा अनेक बड़े-बड़े मकान देख उन्होंने निश्चित किया कि यह कोई नगर है। उसी मार्गसे एक मनुष्य जा रहा था। श्री रामानुजने उससे पूछा—"भाई, इस नगरका नाम क्या है?" पथिकने विस्मित होकर उनकी ओर देखा और कहा—"तुम क्या आकाशसे आते हो, प्रसिद्ध काञ्चीपुरीका नाम तुम नहीं जानते? तुम्हारे आकारसे तो मालूम पड़ता है कि तुम इसी देशके वासी हो, परन्तु बात विदेशीके समान कर रहे हो। तुम तो महात्मा यादवप्रकाशके शिष्य हो न? मैंने तुमको बहुत बार इस काञ्चीपुरीमे देखा है। यह जो बावड़ी तुम देख रहे हो, जिसके जलसे तुमने अभी हाथ-मुँह धोये हैं, सम्भवत इसकी बात तुम्हे मालूम न हो। इसका नाम शालकूप है। इसके जलसे तीनो ताप नष्ट होते हैं। इसी कारण बड़ी-बड़ी दूरके आदमी इसका जल पीनेके लिए यहाँ आते हैं।" यह कहकर पथिक चला गया। निद्रासे उठे हुएके समान श्री रामानुज कुछ भी ठीक नहीं कर सके। वे ठिठककर खड़े रह गये। इसके पश्चात् ही व्याध-दम्पतीका स्मरण हो आनेसे उनके मनकी जड़ता दूर हुई। उन्होने समझ लिया कि लक्ष्मीनारायणकी अपार करुणासे ही मेरी रक्षा हुई है। प्रेम-गद्गद चित्तसे आँसू बरसाते हुए उन्होंने श्रीनारायणके चरणोमें यह कह-कहकर प्रणाम किया—

"नमोब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥"

—**—

चतुर्थ अध्याय

बन्धु-समागम

भगवत्प्रेममें उन्मत्त होकर श्रीरामानुज बार-बार शाल्कूपकी प्रदक्षिणा करने लगे और स्त्रीके साथ श्रीपति-दम्पतिके रूपमें पुन आकर दर्शन देंगे, इस ाशासे चारो ओर देखने लगे। प्राय दो घडी दिन चढा होगा। दो-एक त्रयाँ घड़ा लेकर जल लानेके लिए नगरके समीपस्थ उस विशाल शालकूपकी ोर आ रही हैं। वहांसे काञ्ची प्राय आध कोसकी दूरीपर वर्तमान है। र्व, उत्तर और पश्चिमकी ओर वृक्ष-लता आदि होनेके कारण उधर आदमियोका ाना-जाना बिलकुल ही नहीं था। अत श्रीरामानुज हृदय-द्वारको खोलकर भगवान्की महिमा-कीर्त्तन करके परमानन्दका उपभोग करते थे। उन्होने भगवान्की इस प्रकार स्तुति की—

"कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनम ॥
नम पङ्कजनाभाय, नम पङ्कजमालिने,
नम पङ्कजनेत्राय, नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥"

कुम्भोरके समान उन्होंने यह कहकर भगवान्की स्तुति की—

"विपद सन्तुन शश्वत् तत्रतत्र जगद्गुरो,
भवतो दर्शन यत्स्याद पुनर्भवदर्शनम्।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ।
नमोऽकिञ्चन वित्ताय निवृत्त गुणवृत्तये,
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥”

—श्रीमद्भागवत

जगद्गुरो, आपकी प्रसन्नतासे सदा हम लोगोंको विपद ही हो, क्योंकि विपत्तिके समय ही आपका दर्शन हो सकता है। तुम्हारे दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य ऐश्वर्यवान्, रूपवान् और पण्डित होकर उच्चवंशमें जन्म ग्रहण करनेके कारण अपनेको अधिक गौरवान्वित समझते हैं, उन्हें तुम्हारा नाम ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है। क्योंकि अकिञ्चन भक्त ही तुम्हारा साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हे प्रभो! इस जगत्में जिनको अपना कहनेका कोई पदार्थ नहीं है, उन भक्तोंके आप ही एकमात्र धन हैं। आप धर्म, अर्थ और कामसे अतीत होकर सर्वदा स्वात्मा ही में प्रसन्नता लाभ करते हैं, आपमें वासनाका वेग नहीं है, अतएव आप सब प्रकारसे शान्त हो, आप समस्त जीवोंके मुक्तिदाता हो, अतः मैं आपकी वन्दना करता हूँ। इस प्रकार भगवान् श्रीरामानुज श्रीमन्नारायणकी भक्तिमें विभोर हो रहे थे, उसी समय घडा लिए हुए तीन स्त्रियाँ वहाँ आईं। उनको देखकर श्रीरामानुज काञ्चीकी ओर चले।

पुत्रके विरहमें माता कान्तिमती रो रही हैं। इसी समय प्रिय पुत्रको सहसा सामने देखकर पहले तो उनको विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब श्रीरामानुजने पैर पकड़कर प्रणाम किया तथा ‘मैं आ गया, तुम तो आनन्दमें हो’—ऐसा अमृत-तुल्य मधुर वचन कहा, तब माताका समस्त सन्देह दूर हुआ। उन्होंने पुत्रका मुख चूमा, आशीर्वाद देकर बैठनेके लिए कहा और पूछा—“बेटा! तुम

बहुत जल्दी लौट आये, गोविन्द कहाँ है? सुनती हूँ कि गङ्गा स्नान करके लोग छ महीनेमे लौटते हैं, तो क्या तुम रास्ते ही से लौट आये हो?" श्रीरामानुजने आदिसे अन्त तक सभी बाते कहीं। यादवप्रकाशका पैशाचिक विचार सुनकर माता काँप गई और ईश्वरकी दयाको स्मरण करके तथा पुत्रमुख देख कर वे आनन्दसे अधीर हो गई। श्रीमन्नारायणके लिए भोग बनानेके अर्थ वे रसोईघरमे गई। माता क्या बनावेंगी और क्या करेंगी, मारे आनन्दके इसका कुछ भी ठिकाना नहो था। रसोईघरमे जाकर उन्होंने देखा, लकड़ी नहीं है। आज दो-तीन दिनसे लकड़ी घरमे नही है। किन्तु श्रीरामानुज घरमे नहीं थे, बहू भी अपने पिताके यहाँ गई है, फिर रसोई किसके लिए बने? माता कान्तिमती भगवान्का प्रसाद लेकर दिन काटती थीं। इसी कारण वे लकड़ी की बात बिलकुल भूल गई थी। आज वे श्रीरामानुजके लिए अत्यन्त अधीर होकर एकान्तमे बैठकर रोती थी। इसी कारण उन्हें घरकी कोई बात स्मरण नहीं थी। वे स्वय जाकर बाजारसे लकड़ी खरीद लावेंगी, क्योंकि आज दासी नहीं आई है, और पुत्र बहुत दूरसे चला आता है, इस कारण उसे कष्ट देना भी उचित नहीं। माताने यही निश्चय किया। उसी समयउनकी छोटी बहिन दीप्तिमती बहूको साथ लिए दूसरे द्वारसे आई और प्रणाम करके उन्होंने पूछ—"बहिन, अच्छी तो हो? आज दासीने जाकर कहा कि तुम खाना-पीना छोड़कर दिन-रात रोया करती हो, इसी कारण तुम्हे देखने आई हूँ। डर काहेका, भगवान् हैं, वे बच्चोंकी रक्षा करेंगे। कितने मनुष्य गङ्गा स्नान करके लौट आते हैं। तुम निश्चिन्त रहो। श्रीरामानुज और गोविन्द जब तक नहीं लौट आवेंगे, तब तक मैं भी यहीं रहूँगी। बहूको भी साथ लिए आई हूँ। दासी बाजारसे लकडी खरीद कर " उनकी बात समाप्त होते-न-होते ही श्रीरामानुजने

आकर मौसीको प्रणाम किया। अकस्मात् भानजेको सामने देखकर दीप्तिमती आनन्दसे विह्वल हो गई। श्रीरामानुजको उठाकर–'बेटा चिरजीवी होओ'—आशीर्वाद दिया और गोविन्दका समाचार पूछने लगीं। कान्तिमती बहिन और बहूको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। लज्जाशीला बहू भी आकस्मिक प्रिय समागमसे अत्यन्त आनन्दित होकर पतिदेवके पैरोंपर पड गई और प्रेम-जलसे चरण प्रक्षालन करने लगी। आचार्य-परिवारमें मानो आज आनन्दकी तरगें उठ रही हैं।

इसी समय घी, शक्कर, चावल, शाक, नून, लकड़ी आदि अनेक प्रकारकी रसोईकी सामग्री लेकर दासी आई। दोनों बहिनोंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक भगवान्के भोग प्रस्तुत किए। भगवान्को भोग लगाकर श्रीरामानुजने घरके बाहर आकर देखा कि श्रीकाञ्चीपूर्ण उनके आनेका समाचार सुनकर उन्हें देखनेके लिए बैठे हैं। जिस प्रकार पूर्णचन्द्रको देखनेसे समुद्र आनन्दसे प्रफुल्लित होकर असख्य तरङ्गमालाएँ उठाता है और उनके द्वारा चन्द्रमाकी किरणोंका आदर करता है, उसी प्रकार श्रीरामानुजको देखकर श्रीकाञ्चीपूर्णने भी पुलकित होकर और दोनों हाथ बढ़ाकर प्रणाम करते हुए श्रीरामानुजके हाथ पकड़ लिए, और अपने चतुर्थ वर्ण होनेका उन्हें स्मरण दिलाते हुए बड़े आदरपूर्वक उन्हें लोकविरुद्ध काम करनेसे रोका। तब श्रीरामानुजने कहा—"महात्मन्! आज हमारा बड़ा सौभाग्य है कि आपका दर्शन हुआ। कृपा करके आज आप यहीं प्रसाद लें, सभी कुछ तैयार है।" श्रीकाञ्चीपूर्णने भी स्वीकार किया।

श्रीरामानुजके घरमे आज जैसा आनन्दोत्सव हुआ, वैसा उनके पिताके परलोक जानेके बादसे नहीं हुआ था। यद्यपि गोविन्दके न रहनेके कारण दीप्तिमतीको दुःखित होना चाहिये था, तथापि श्रीरामानुजके प्रति उसका ऐसा पुत्रवत् स्नेह था कि दुःख होना तो दूर रहे, उसके समान आनन्दित दूसरा नहीं हुआ।

—*:* *—

पंचम अध्याय

राजकुमारी

इस समय श्रीरामानुज अपने घर ही मे बैठकर अध्ययन करते हैं। उन्होने माता और मौसीको यादवप्रकाशकी सब बातें कहकर और उन्हे गुप्त रखने के लिए कह दिया है और स्वय भी वे इसकी चर्चा किसीसे नहीं करते। तीन महीनेके बाद यादवप्रकाश भी अपने शिष्योंके साथ काञ्चीमे लौट आये। गोविन्दके अतिरिक्त उनके अन्य सभी शिष्य आये हैं। दीप्तिमतीने पुत्रका समाचार पूछकर यह जाना—वनमे रामानुजका साथ छूट जानेके अनन्तर तीर्थयात्रीगण दुःखित होकर निरन्तर काशीकी ओर जाने लगे। वहाँ निर्विघ्न पहुँचकर उन लोगोने श्रीविश्वनाथका दर्शन किया। तदनन्तर वे वहीं एक पक्ष तक ठहरे। एक दिन गङ्गा स्नानके समय जलमे से गोविन्दको एक सुन्दर * वाण लिङ्ग प्राप्त हुआ। यह देख यादवप्रकाश बहुत प्रसन्न हुए और वे गोविन्दको अनेक धन्यवाद देने लगे। यादवप्रकाशने कहा—"बेटा! महादेव तुमपर बहुत प्रसन्न हुए हैं, इसी कारण इस अमूल्य लिङ्ग रूपसे तुम्हारी पूजा ग्रहण करनेके लिए तुम्हारे पास आये हैं। बड़े यत्नसे तुम इनकी सेवा करो। तुम्हारा लोक-परलोक दोनों बनेगा।" गुरुके उपदेशसे उसी दिनसे गोविन्द शिवकी सेवा करने लगे। शनैः-शनैः उनकी भक्ति प्रबल हुई और कालहस्तिके समीप आकर उन्होंने अपने गुरु

---

* यादवप्रकाशकी इसमे भी कोई चाल अवश्य थी।

और साथियोंको सम्बोधित करके कहा—"मैं अपने जीवनका शेष भाग यहीं शिवकी सेवामें बिताऊँगा। यह स्थान अत्यन्त मनोहर और एकान्त है। यहीं रहकर मैं अपने इष्टदेवकी उपासना करूँगा। यह बात आप लोग मेरी माता और मौसीसे कह दीजियेगा।" यह कहकर गोविन्द वहाँसे विदा हुए और पास ही मङ्गल गाँवमे स्थान खरीदकर उन्होंने वहीं अपने इष्टदेवकी स्थापना की और उनकी सेवामें जीवन तथा मन अर्पणकर वे रहने लगे।

पुत्रके इस सौभाग्यकी बात सुनकर दीप्तिमती बड़ी आनन्दित हुई। अन्य स्त्रियोंके समान उनका पुत्र-प्रेम नही था। ईश्वरमें उनकी असीम भक्ति थी। अतएव पुत्रके लिए उनके मनमे दु ख नही हुआ, किन्तु अपनेको सत्पुत्रकी माता जानकर वे आनन्दमग्न हो गई। भगिनीकी आज्ञा लेकर पुत्रको देखनेके लिए वे मङ्गल ग्राम गईं। पुत्रकी भगवद्भक्ति देख वे अत्यन्त आनन्दित हुई और पुत्रको आशीर्वाद दे लौट आई।

यादवप्रकाशने पुन· पढ़ाना आरम्भ किया। श्रीरामानुजको देखकर पहले तो वे डर गये थे, परन्तु उनके पैशाचिक विचारको कोई नहीं जानता, यह जानकर बाहरी आनन्द प्रकाशित करते हुए उन्होंने माताके सामने श्रीरामानुजसे कहा—"बेटा! तुम जीते हो, इससे बढ़कर हमारे आनन्दके लिए और क्या हो सकता है। विन्ध्याचलके वनमे तुम्हारे लिए हम लोगोने जो कष्ट उठाया है, उसे कहकर मैं कैसे जनाऊँ।" श्रीरामानुजने प्रणामकर कहा—"सब आप ही की दया है।"

जो समस्त सिद्धान्तोंपर अपने सिद्धान्तको रखना चाहते हैं, वे अन्य विषयोंमें चाहे जितने उन्नत हों, परन्तु उनको सकीर्ण-चित्त होना ही पड़ेगा। यादवप्रकाशमें और अनेक गुण थे, परन्तु अद्वैत मतका अवलम्बनकर वे

अन्यान्य मतोंकी यथार्थता, सरलता, सुन्दरता आदिके विषयमे अन्धे हो जाते थे। परन्तु आज श्रीरामानुजकी नम्रता और सुशीलता देखकर और अपना राक्षसोचित कर्म यादकर वे मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए। तदनन्तर बडे स्नेहसे श्री रामानुजसे कहा—"बेटा! आजसे तुम हमारे यहाँ पढा करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।" उसी दिनसे पुन श्रीरामानुज यादवप्रकाशके यहाँ आने-जाने लगे।

इसके कुछ दिनोके बाद वृद्ध आलवन्दार श्रीकाञ्चीपुरमे श्रीवरदराजके दर्शन करनेके लिये अपने शिष्योंके साथ गये। एक दिन वरदराजके दर्शन करके लौटनेके समय महात्मा आलवन्दारने श्रीरामानुजके कन्धेपर हाथ रखे तथा अन्यान्य शिष्योके साथ अद्वैतकेशरी यादवप्रकाशको आते देखा। वृद्ध यामुनाचार्य श्रीरामानुजकी सात्विक प्रभा, उनका अतुल सौन्दर्य तथा उनका प्रतिभोद्भासित मुखमण्डल देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पूछ करके जाना कि इसी युवकने "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म" इस श्रुतिकी विस्तृत व्याख्या की है, इससे वे बहुत प्रसन्न हुए तथा शुष्कतार्किक यादवके पास उनको देख दु खित हुए और वरदराजसे प्रार्थना करने लगे—

"यस्य प्रसाद कलया बधिर शृणोति,
पगु प्रधावति गवेन च वक्ति मूक।
अन्ध प्रपश्यति सुत भलते च वन्ध्या,
त देवमेव वरद शरण गतोऽस्मि॥
लक्ष्मीश पुण्डरीकाक्ष कृपा रामानुजे तव,
निधाय स्वमते नाथ प्रविष्ट कर्तुमर्हसि।"

जिसके स्वल्प प्रसन्नतासे बधिर सुनने लगता है, पगु बडे वेगसे दौड़ने

लगता है जिह्वाहीनको वाक्स्फूर्ति होती है, अन्धेको आँख मिलती है और वन्ध्या पुत्रवती होती है, मैं उसी वरददेवके शरणागत हूँ। हे नलिननेत्र श्रीपते! रामानुजपर कृपा करके उसे अपने मतमें ले आइये।

श्रीयामुनाचार्य चित्तानन्दकरी कमनीय मूर्तिमती विष्णु-भक्तिको विष्णु-भक्तिविहीन राक्षस-हृदय यादवके समीप देखकर बड़े दुःखी हुए। श्रीरामानुजसे बात करनेकी बलवती इच्छा रहनेपर भी यामुनाचार्यने उसे विषयुक्त अन्नके समान छोड़ दिया। पुनः भेंट होनेपर बात करूँगा, यह कहकर उन्होंने अपने उत्कण्ठित चित्तको समझाया, और वहाँसे भक्तिरसपरायण ज्ञानवृद्ध श्रीवैष्णवचूड़ामणि वृद्ध आलवन्दार श्रीरङ्गजीके लिये प्रस्थित हुए।

वेदान्तके अतिरिक्त यादवप्रकाश मन्त्रशास्त्रके भी पारदर्शी विद्वान् थे। भूत-प्रेत-ग्रस्त मनुष्योंको वे मन्त्रबलसे आरोग्य कर दिया करते थे। उनकी इसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी।

एक समय काञ्चीपुरकी राजकुमारी भूतसे पीड़ित हुई। चारों ओरसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्त्रशास्त्री निमन्त्रित किये जाने लगे। परन्तु कोई भी कुमारीको निरोग नहीं कर सका। अनन्तर वेदान्ताचार्य यादवप्रकाश बुलाये गये। भूत-ग्रस्त राजकुमारी यादवप्रकाशको देखते ही बड़े ज़ोरसे हँसी और बोली—"तुम्हारे मन्त्र-तन्त्रसे यहाँ कोई फल होनेवाला नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो घर लौट जाओ।" उसकी बातोंपर ध्यान न देकर यादव एक पहर तक मन्त्रोच्चारण करते रहे, परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। तब भूतने कहा—"क्यों कष्ट उठाते हो। तुम हमसे भी अधम हो, अतः तुम हमको यहाँसे हटा नहीं सकते। यदि तुम यही चाहते हो कि मैं इस कोमलाङ्गी राजकुमारीको छोड़कर हट जाऊँ, तो तुम्हारे शिष्योंमें जो सबसे कम अवस्थाका है, जो आजानुबाहु,

विस्तृत ललाट, प्रतिभाकी आवासभूमि, यौवन-वनका सर्वसुन्दर कुसुम श्रीमान् रामानुज है, उसे यहाँ बुलाओ। मेघाच्छन्न अमावस्याकी रात्रिका घोर अन्धकार जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार उस महानुभावके दर्शनसे मैं भी हट जाऊँगा।"

यादवप्रकाशने उसी समय श्रीरामानुजको वहाँ बुलवाया। भूतको राजकुमारीके शरीरसे हट जानेके लिये उनके द्वारा कहे जानेपर उस भूतने कहा—"आप कृपा करके मेरे सिरपर अपना चरण रखिये, मैं चला जाऊँगा। आप इस दासकी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।" गुरुकी आज्ञासे श्री रामानुजने राजकुमारीके सिरपर पैर रखा और कहा—"राजकुमारीको छोड़ दो, और तुमने छोड़ा, इसका भी प्रमाण देते जाओ।" भूतने कहा—"यह मैं छोड़ता हूँ, इसके प्रमाणमे सामनेके पीपलके वृक्षकी शाखाको मै तोड़ता हूँ।"

देखते-देखते पीपलकी एक शाखा टूट गई और राजकुमारी निद्रासे उठी हुईके समान चारों ओर देखने लगी। चेतना होनेपर उसने अपनेको सम्हाला और अपनी पूर्व अवस्थाको स्मरण करके वह लज्जित हुई तथा दासियोंके साथ वहाँसे उठकर वह भीतर चली गई।

काञ्चीराज अपनी कन्याके निरोग होनेका समाचार सुन शीघ्र ही वहाँ आये, और यादव तथा श्रीरामानुजको प्रणाम करके विशेष कृतज्ञता प्रकाशित की। तभीसे श्रीरामानुजका नाम विख्यात हो गया।

पूर्वोक्त भूतकी कथा केवल श्रीरामानुज-चरितमें ही हम लोग पहले-पहल देखते हैं, ऐसा नहीं है। ईसाकी जीवनीमे भी हम लोगोंको इसी प्रकारकी घटना अवगत होती है। महात्मा तुलसीदासके जीवनमे उलेट-फेर भी एक प्रेत की कृपाका ही फल बतलाया जाता है। सुना जाता है, इस देशमे आज भी

कहीं-कहीं स्त्रियोको भूतपीड़ा होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक इस प्रकारके रोगीको हिष्टिरिया रोगग्रस्त बतलाते हैं। स्नायुकी दुर्बलता ही इसका कारण है। अधिक कोमलताके कारण स्त्रियोमे प्राय स्नायुकी दुर्बलता अधिक रहती है, अत स्त्रियाँ ही इस रोगसे अधिक पीड़ित होती हैं—यह पाश्चात्य वैज्ञानिकोका सिद्धान्त है। स्नायुके बलपर ही यह मनुष्य स्थिर है। स्नायुकी दुर्बलता तथा सबलता के कारण ही मनुष्य दुर्बल अथवा बलवान् होते हैं—यह बात माननी ही पड़ेगी। हमारे देशमे चार्वाक सम्प्रदायके विद्वान् बहुत पहले इस सिद्धान्तको मान चुके हैं। परन्तु यह सिद्धान्त सत्सिद्धान्त नहीं है, इस बातको आत्माको नित्य माननेवाले सभी स्वीकार करते हैं। आत्मा शरीरकी रक्षा करता है, शरीर आत्माकी रक्षा नहीं करता, क्योंकि आत्मसत्ता ही से शरीरकी सत्ता तथा सजीवता है, यह सभीको विदित है। अत आत्मा मानव-शरीरके अधीन नहीं है, किन्तु देह ही आत्माके अधीन है। आत्मा देहका आश्रय करके जगत्मे सुख-दु ख आदिका भोग करता है। यही आत्मा स्थूल देहसे युक्त होनेपर मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदिका रूप तथा नाम धारण करता है और स्थूल शरीरसे विमुक्त होनेपर गुणके अनुसार देवता, उपदेवता, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत आदिका आकार धारण करता है। जो पदार्थ इन्द्रियोके द्वारा न जाना जाय, वह है ही नहीं, ऐसा कहना बुद्धिमानोंको शोभा नहीं देता। अत सूक्ष्म शरीरका अस्तित्व स्वीकार न करना मूर्खता है। साख्य-कारिका-कार महात्मा ईश्वरकृष्णने इस बातकी सुन्दर मीमासा की है। उन्होंने कहा है—

"अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्यात् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च।
सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धे ॥"

जो इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है, वह नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अति दूर होनेसे, अति निकट होनेसे, इन्द्रिय-विकलताके कारण, मन संयोग न रहनेके कारण, वायुके समान सूक्ष्म पदार्थ होनेके कारण, दूसरे पदार्थके बीचमें आ जानेसे, सूर्य-प्रकाशसे, ग्रह-नक्षत्रादिके समान अन्य वस्तुओं द्वारा अभिभूत होनेसे, जलमें जल मिलनेके तुल्य समान आकार हो जानेसे अथवा केवल अति सूक्ष्म योगबुद्धि ही के गोचर होनेसे साधारण मनुष्यको इन्द्रियों द्वारा विद्यमान वस्तुका भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। वह वस्तु है ही नहीं, इस कारण उसका ज्ञान नहीं होता—यह बात नहीं है, क्योंकि कार्य द्वारा उसका अस्तित्व तो प्रमाणित होता ही है।

सत्त्वप्रधान सूक्ष्म शरीर होनेपर देवशरीर, रज प्रधान होनेपर उपदेवादि का शरीर और तम प्रधान होनेपर ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत आदिका शरीर प्राप्त होता है। सूक्ष्म शरीरधारी स्थूल शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं। इसी कारण सात्विक मनुष्यमें देवताका आवेश, राजसिक मनुष्यमें उपदेवताका आवेश और तामसिक मनुष्यमें भूत-प्रेत आदिका आवेश होना सम्भव है।

इस घटनाके पश्चात् पहलेके समान यादवप्रकाश अध्यापन-कार्य करने लगे। प्रतिदिन श्रीरामानुज प्रभृति शिष्यगण उनके चारों ओर बैठते और उनका सूक्ष्म शास्त्रार्थ सुनकर परम आनन्दित होते थे। एक दिन "सर्वं खल्विद ब्रह्म" (छान्दोग्य) और "नेहनानास्ति किञ्चन" (कठ) इस दोनों मन्त्रांशोंकी व्याख्या के समय यादवप्रकाशने अति सुन्दर रूपसे आत्मा और ब्रह्मकी एकता प्रतिपादित की। उनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुजके अतिरिक्त और सभी शिष्य प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त होनेपर श्रीरामानुजने दोनों मन्त्रांशोंके विषयमें अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित की। "सर्वं खल्विद ब्रह्म" इसका अर्थ निखिल

जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यदि ऐसा न होता, तो उसका "तज्जलान्" विशेषण न होता। यह जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न है, ब्रह्म द्वारा जीवित है और अन्तमे ब्रह्ममे ही लय होता है। इसी कारण इसे ब्रह्ममय कहा जाता है। मछली जलसे उत्पन्न होती है, जलके ही द्वारा जीवित रहती है और जलमे ही वह लय होती है; परन्तु वह कभी जल नही हो सकती। इसी प्रकार जगत् कभी ब्रह्म नही हो सकता। "नेहनानास्ति किञ्चन" इसका अर्थ एकसे अतिरिक्त अन्य वस्तु नही है—ऐसा नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि ससारमे वस्तु-समूह पृथक्-पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार एक सूतमें कई मोती मिलकर एक माला हो जाती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ ब्रह्मरूपी सूत्रमे आबद्ध होकर जगत्के रूपमे परिणत होती हैं। अनेक केवल एकमे मिलकर एकाकार धारण किए हुए हैं। इससे अनेकत्वमे कोई हानि नहीं होती।

इस व्याख्याको सुनकर यादवप्रकाश बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने श्रीरामानुजसे कहा—"यदि हमारी व्याख्या तुम्हे अच्छी नहीं जान पड़ती, तो तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नही है।" "जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर श्रीरामानुज गुरुको प्रणाम करके अपने घर चले गये।

षष्ठ अध्याय

श्रीकांचीपूर्ण

दूसरे दिन श्रीरामानुज अपने घरमे बैठकर शास्त्रालोचना करते थे, उसी दिन श्रीकाञ्चीपूर्ण वहाँ आकर उपस्थित हुए। उस समय प्राय पाँच घड़ी दिन चढ आया था। स्मितवदन भगवद्भक्तिपूर्ण श्रीकाञ्चीपूर्णको आते देख श्रीरामानुज परम आनन्दित हुए। श्रीरामानुजने उठकर उनके बैठनेके लिये आसन रखकर कहा—"हमारे भाग्यसे ही आज आपका आना हुआ। करुणामय श्रीवरदराजकी यह असीम दया है। इसी कारण उन्होंने अपने इस अज्ञ बालकको ससारमे नि सहाय विचरण करते देख आपको हमारी रक्षाके लिये भेजा है। आपने सुना होगा, यादवप्रकाशने हमको अपने यहाँ आनेकी मनाई की है, किन्तु आप-जैसे महान् चन्दन-वृक्षकी शीतल छाया पानेसे हमारा वह दु ख मिट जायगा—ऐसी हमे पूर्ण आशा है। आप हमारे गुरु हैं, कृपा कर आप हमको शिष्य बनावें।" यह सुनकर श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"बेटा रामानुज, मैं वैश्य और मूर्ख हूँ। तुम सद्ब्राह्मण और महापण्डित हो। मुझसे तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिये था। मैं अवस्थामे वृद्ध हूँ सही, किन्तु तुम ज्ञानवृद्ध हो। शास्त्रमे मेरा वैसा ज्ञान नहीं है। इसी कारण श्रीवरदराजका दासत्व करके जीवन बिता रहा हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम मेरे गुरु हो।"

श्रीरामानुजने कहा—"महाराज ! आप ही यथार्थ पण्डित हैं । शास्त्रोंसे जाना जाता है कि एक ईश्वर ही सत्य हैं और उनकी सेवा ही परम पुरुषार्थ है । यदि शास्त्र-ज्ञान भगवद्भक्ति उत्पन्न न करे और केवल पाण्डित्याभिमान उत्पन्न करे, तो उस मिथ्या ज्ञानसे अज्ञान ही उत्तम है । आपने शास्त्रोंके यथार्थ तत्वका आस्वादन किया है । अन्यान्य पण्डित लोग चन्दन-भारवाही गर्दभके समान केवल भारवहन करते है । आप मेरा परित्याग न करें, सब प्रकारसे आपके चरणोंका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।" इतना कह-कर श्रीरामानुज सहसा उनके पैरोंपर गिर पड़े और दु खीके समान रोने लगे । श्रीकाञ्चीपूर्णने बड़े प्रेमसे उनको उठाकर कहा—"बेटा ! मैं तुम्हारी भगवद्भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । तुम आजसे प्रतिदिन शालकूपसे श्रीवरदराजकी सेवाके लिये एक घड़ा जल ले आया करो । बहुत शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा ।" "आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है"—कहकर श्रीरामानुज घरसे एक नया घड़ा लेकर शालकूपकी ओर चले । श्रीकाञ्चीपूर्ण भी श्रीवरदराजकी सेवाके लिये उनके मन्दिरकी ओर चले ।

श्रीकाञ्चीपूर्ण कौन हैं ? पूविरुन्दवल्लिमे उनका जन्म हुआ था । बाल्या-वस्थासे ही वे श्रीवरदराजकी सेवामे लगे थे । केवल श्रीवरदराज ही उनके स्त्री, पुत्र आदि परिवार हैं । श्रीकाञ्चीपूर्ण सदा व्याकुल रहते थे, किस प्रकार श्रीवरदराज प्रसन्न हों, यही उनकी एकमात्र चिन्ता थी । गरमीके दिनोंमे सर्वदा शीतल जलशिक्त पखा हाथमे लेकर वे अपने आराध्यदेवकी सेवा किया करते थे । कहाँ उत्तम फूल फूला है, कहाँ अमृतोपम फल पका है—इन सबका वे पता रखते थे। यथासमय वे उचित मूल्य देकर अथवा भिक्षा माँग कर उत्तम पुष्प, फल आदि भगवान्के लिये लाते थे । साधारण मनुष्य

उन्हे मनुष्य नहीं समझते थे, किन्तु लोगोंका विश्वास था कि ये वरदराजके नित्यदास हैं और वैकुण्ठसे आये हैं। काञ्चीके रहनेवाले उनकी अत्यन्त भक्ति करते थे। उनका स्वभाव बालकोंके समान था। अभिमान किसको कहते हैं, यह वे जानते ही न थे। जो उनको देखते थे, उनके दु ख और कलक छूट जाते थे और वे आनन्दित हो जाते थे। मनोमालिन्य, हृदय-सन्ताप, दु ख-दरिद्रता आदि उनको देखनेसे ही दूर हो जाते थे। जिस प्रकार वसन्त-ऋतुके आनेसे मधुकी वर्षा होती है, उसी प्रकार श्रीकाञ्चीपूर्ण भी जहाँ जाते थे, वहीं स्वर्गीय सुखका विस्तार करते थे। सभी उनको अपना अत्यन्त परिचित समझते थे। उन्हे कोई साधारण मनुष्य नहीं समझता था, क्योंकि उनका स्वभाव प्राय अलौकिक रूप धारण करता था। उनके साथ कोई अलौकिक पुरुष सर्वदा वर्तमान रहता था। मनुष्योंके साथ बातचीत करते समय वे सभीको भूल जाते थे, केवल उसी पुरुषकी बातें सुनते और बीच-बीचमें हँसा करते थे। कभी-कभी वे न मालूम क्या बकने लग जाते थे। यह देखकर सभी मौन रह जाते थे, किन्तु कोई उन्हे उन्मत्त नहीं कहता था, क्योंकि उनके मुखकर एक ऐसी मधुरता और गम्भीरताकी रेखा थी, जिसे देखकर कठोर प्रकृति भी पिघल जाती थी। वह अदृश्य पुरुष कौन है? सभी एक वाक्यसे कहते थे कि साक्षात् श्रीवरदराज। वे श्रीवरदराजके साथ वार्तालाप करते थे, वे भगवान्‌के मुखस्वरूप थे, उन्हींके द्वारा श्रीभगवान् अपना अभिप्राय प्रकाशित करते थे—यह सभी कहते थे। वे स्वय अपनेको नीच कहा करते थे और ब्राह्मणोंकी विशेष श्रद्धा-भक्ति किया करते थे। अनेक ब्राह्मण उनका आदर करते थे और वैश्य होनेके कारण उनसे घृणा नहीं करते थे। केवल कतिपय पाण्डित्याभिमानी उन्हे पागल कहते थे, जिनमे यादवप्रकाश भी एक थे।

सप्तम अध्याय

श्रीआलवन्दार

कुछ दिनोंके अनन्तर वृद्ध श्रीआलवन्दार रोगग्रस्त होनेके कारण शय्याशायी हुए। शिष्यगण शय्याके चारों ओर बैठकर उनकी सेवा करने लगे। वे ज्ञान और भक्ति-स्वरूप महासत्व यामुन मुनि रोगसे पीड़ित होनेपर भी एक क्षणके लिये भगवद्दास्यकी महिमा कीर्त्तन करनेसे विरत नहीं हुए। वे शिष्योंको बार-बार सम्बोधन करके कहने लगे—"जिस प्रकार पुष्पोंका सार मधु है, दूधका सार घृत है, उसी प्रकार त्रिलोकके सार नारायण हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे चतुर्वर्गकी प्राप्ति होती है।" श्रीमहापूर्ण श्रीगोष्ठीपूर्ण आदि शिष्योंने श्रीआलवन्दारके समवयस्क न्यासिचूड़ामणि तिरुवराङ्ग पेरुमाल अरैयासे सन्देह दूर करनेके अर्थ यामुनाचार्यसे एक-दो प्रश्न करनेका अनुरोध किया। उन्होंने शय्याशायी यामुनाचार्यसे पूछा—"श्रीमन्नारायण तो वाक् और मनसे अतीत हैं, तब किस प्रकार उनकी सेवा की जायगी?" यामुन मुनिने उत्तर दिया—"भक्तोंकी सेवा करनेसे ही भगवान्‌की सेवा होती है। भक्तोंकी न जाति है, न उनका कुल है। वे ही ईश्वरकी दृश्यमान मूर्ति हैं। तुम लोग चाण्डाल-कुलोद्भव तिरुप्पाण आलवारकी सेवा करना, इसीसे तुम लोगोंका कल्याण होगा।" उन्होने और भी कहा—"श्रेष्ठ भक्तगण, निष्ठा-भक्तिकी सहायतासे नारायण और उनके भक्तोंकी अर्चा मूर्तिकी सेवा करते हैं। तिरुप्पाण आल-

त्रार अनन्य चित्तसे श्रीरगनाथकी सेवामे लगा है। श्रीकाञ्चीपूर्णकी श्रीवरद-राजकी सेवामे कैसी निष्ठा है! ये सब महापुरुष हैं। इनके समान आचरण करनेसे मगल होता है। 'महाजनो येन गत स पन्था.'।" पुन तिरुवरागकी ओर देखकर उन्होने कहा—"श्रीरगनाथ भक्त तिरुप्पाण आलवार ही हमारे प्रधान आश्रय हैं। वे ही हमारे समार-समुद्रके कर्णधार हैं।" यह सुनकर तिरुवराङ्गका हृदय व्यथित हुआ और उन्होंने कहा—"क्या आपने शरीर त्याग करनेकी इच्छा की है?" यामुनाचार्यने उत्तर दिया—"यदि भगवान्‌की इच्छासे हमे यह शरीर छोड़ना भी पड़े, तो इससे तुम्हारे समान महात्माको दु खित होनेका कोई कारण नहीं है। ईश्वरकी इच्छासे जो कुछ हो, वही मगल है, ऐसा दृढविश्वास होना उचित है। अहकारका उनके चरणोमे बलिदान करके तुम लोगोको चिरकालके लिए सुखी हो जाना चाहिये। अहकार ही सब दु खोंका मूल है और निरहकार होना सब सुखोका मूल है। निरहकारी पुरुष कभी कर्म-बन्धनसे बद्ध नहीं हो सकता। मैं उनका दास हूँ, इस प्रकारके हृदयका भाव होनेपर अहकारके हाथसे छुटकारा मिल सकता है। अहकारके नाश होनेपर मनुष्य समझ सकता है कि मै जन्म-मरणके अधीन नहीं हूँ, किन्तु श्रीमन्नारायणका नित्य दास हूँ। उस समय 'हे प्रभो! मेरी रक्षा करो'—ऐसा कहकर उन्हे भगवान्‌के चरणोमे प्रार्थना करनी नहीं पड़ती। उसी समय वे निष्काम भावसे भगवान्‌की सेवा कर सकते हैं। उसी समय उनकी अलौकिक भक्ति होती है। उसी समय वे ईश्वरके यथार्थ दास होते हैं। प्रपन्न हो जानेके पश्चात् भगवदधीन आत्म-यात्रा और कर्माधीन देह-यात्रा दोनोमे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। यदि उसके लिये वह सप्रयत्न होगा, तो प्रपत्तिनिष्ठाका भग होकर वह नष्ट हो जायगा।"

तिरुप्याण आलवारकी सेवामे तिवरांगका एकान्त अनुराग जानकर जमुनाचार्यने कहा—"तुम जो करते हो, उसके द्वारा शीघ्र ही तुम्हे अहैतुकी भक्तिकी प्राप्ति होगी।" जब ये बातें हो रही थीं, तब श्रीमहापूर्ण और श्रीगोष्ठीपूर्णने मन ही मन यह सङ्कल्प किया कि आलवन्दारके शरीर त्याग करनेपर हम लोग आत्महत्या कर लेगे। उसी समय एक दूसरे शिष्यने कहा—"आपके न रहनेपर हम लोग किसके आश्रयमे रहेगे? कौन हम लोगोको इस प्रकार आश्वासन प्रदान करेगा?" इतना कहकर वह रोने लगा। श्रीयामुनाचार्यने उसे समझाते हुए कहा—"बेटा! तुम लोग घबराना नहीं। श्रीरंगनाथ ही तुम लोगोके आश्रय थे, हैं और रहेगे। सर्वदा उनका दर्शन करना। बीच बीचमे श्रीवेंकटाचलस्थ श्रीनिवासजी और श्रीकाञ्चीपुरस्थ श्रीवरदराजका भी दर्शन करना।"

उनके शरीर त्याग करनेपर उनका शरीर जलाया जायगा अथवा समाधिस्थ किया जायगा, तिरुवरांगके यह पूछनेपर उन्होने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, क्योंकि उनका मन उस समय भगवान्के चरणोंमे लीन हो चुका था। शिष्योमे से अनेकोने आत्महत्या करनेका सङ्कल्प कर लिया था।

दूसरे दिन श्रीरंगनाथ असंख्य सेवकोंके साथ वायु-सेवनके लिये मन्दिरके बाहर गये। वहाँके वासी समस्त नर-नारी भगवान्के दर्शनके लिए वहाँ उपस्थित हुए। मनुष्योंसे चतुष्पथ भर गया। श्रीयामुनाचार्यके शिष्य भी गुरुकी आज्ञासे वहाँ आये। उसी समय भगवान्के एक सेवकपर देवताका आवेश हुआ। उसने श्रीमहापूर्ण और श्रीगोष्ठीपूर्णको सम्बोधित करके कहा—"तुम लोग आत्महत्याके विचारको छोड़ दो, यह मेरा अभिप्रेत नहीं है।" यह कहकर उसने तिरुवराङ्गके हाथ उन्हे सौंप दिया। तिरुवराङ्गने उन लोगोंको यामुना-

चार्यके निकट ले जाकर सब निवेदन किया। उन ज्ञानी महापुरुषने कहा—"आत्महत्या महापाप है। तुम लोगोंपर ईश्वरकी दया है; अत उन्होंने स्वय तुम लोगोंको यह दुष्कर्म करनेसे निषेध किया है। ऐसे सकल्पको शीघ्र ही छोड़ दो।" थोड़ी देर ठहरकर उन्होंने पुन कहा—"तुम लोगोंको मेरा अन्तिम उपदेश यही है कि भगवान्‌के चरणारविन्दमे कुसुमाञ्जलि अर्पण करना, गुरूपदिष्ट मार्गसे चलना और भक्तोंकी सेवा द्वारा सर्वदा अहकारको नाश करनेकी चेष्टा करना।" यह कहकर उन्होंने तिरुवरागके हाथ समस्त शिष्यमण्डलीको सौंप दिया।

श्रीआलवन्दारका वह रोग छूट गया। उन्होंने स्वय श्रीरगनाथके उत्सवमे योग दिया था। समस्त शिष्यमण्डलीके साथ भगवान्‌का प्रसाद लेकर वे मठमें आये और पुन शास्त्र-व्याख्या करने लगे। इसी समय काञ्चीसे दो ब्राह्मण आकर वहाँ उपस्थित हुए। यामुना मुनिके रोगका सवाद सुनकर ये लोग उनके दर्शन करनेको वहाँ गये थे। उनको देखकर श्रीआलवन्दार बड़े प्रसन्न हुए और वे श्रीरामानुजका समाचार पूछने लगे। ब्राह्मणोंने कहा—"इस समय श्रीरामानुजने यादवप्रकाशका शिष्यत्व छोड़ दिया है। अब वे घरपर ही बैठकर शास्त्रकी आलोचना करते हैं तथा श्रीकाञ्चीपूर्णके कथनानुसार प्रतिदिन शाल-कूपसे एक घड़ा जल लाकर श्रीवरदराजकी सेवा करते हैं।" यह सुनकर श्रीयामुनाचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय आठ श्लोक बनाकर भगवान्‌की स्तुति की और महापूर्णको सम्बोधित करके कहा—"बेटा! तुम शीघ्र ही जाकर श्रीरामानुजको यहाँ बुला लाओ। उनके भीतर ईश्वरत्व छिपा हुआ है। उनको अपनेमें मिला लेनेसे अत्यन्त मगल होगा।" यह सुनकर उसी समय गुरुके चरणोंको प्रणामकर श्रीमहापूर्णने काञ्चीपुरकी यात्रा की

दो-चार दिनोंके बाद पुन श्रीआलवन्दार रोगग्रस्त हुए। पुन उनके लिए शिष्यगण उत्कण्ठित हो उठे। इस बारकी पीड़ा कुछ अधिक दु खदायिनी थी। उसी अवस्थामे एक दिन स्नानकर वे मन्दिरमे श्रीरगनाथ भगवानके दर्शन करनेके लिए गये और वहाँ प्रसाद ग्रहणकर पुन अपने मठमे लौट आये। शिष्योंके मध्याह्नका भोजन कर लेनेपर उन्होने अपने गृहस्थ भक्तोको बुलानेकी आज्ञा दी। सब शिष्योंके एकत्रित होनेपर श्रीयामुनाचार्यने कहा—"यदि हमसे आप लोगोमे से किसीका कुछ अपराध हो गया हो, तो उसे क्षमा करे।" उन लोगोने कहा—"यदि ईश्वरके द्वारा अपराध होना सम्भव हो सकता है, तो आपसे भी अपराध होना सम्भव है।" पुन, तिरुवराङ्ग आदि शिष्योका भार उनपर सौपकर वे कहने लगे—"प्रतिदिन नियमपूर्वक श्रीरगनाथजीकी सेवा, दर्शन, प्रसाद, पुष्प आदि ग्रहण करना। ऐसा करनेसे शीघ्र ही मन-बुद्धि निर्मल होगी और भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होगा। सर्वदा गुरुभक्तिपरायण और अतिथि-सेवक बने रहना।" वे सभी चले गये। श्रीआलवन्दारके इस अभिनव भावको देखकर सभी विस्मित हुए।

गृहस्थ भक्तोके चले जानेपर श्रीआलवन्दार पद्मासन लगाकर बैठ गये। मनको बाह्य विषयोंसे हटाकर उन्होने हृदयस्थ किया। उस समय समस्त शिष्य मधुर स्वरसे भगवत् माहात्म्य कीर्त्तन करने लगे। सुमधुर वंशीध्वनिने उस गानको अधिकतर मधुर बना दिया। एक प्रकारकी स्वर्गीय शान्ति और सुखसे सबका मुखमण्डल प्रकाशित हुआ। भगवद्भक्तिके आवेगमें सभी आत्मविस्मृत हो गये। क्रमश आलवन्दारने मनको हृदयसे भ्रूमध्यस्थ किया। दोनों नेत्रोंके कोणसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। समस्त शरीर रोमाञ्चित और कण्टकित हो गया। सबके देखते ही देखते श्रीयामुनाचार्य ब्रह्मरन्ध्रको फोड़कर परब्रह्ममें

लीन हो गये। सबका गला रुँध गया। श्रीगोष्ठीपूर्ण और अन्यान्य शिष्यगण चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। कितने ही तो मूर्छित होकर गिर पड़े।

कुछ क्षणोंके अनन्तर शोकावेगके निरस्त होनेपर शिष्यगण श्रीआलवन्दार-नन्दन छोटे पूर्णको साथ लेकर अन्तिम कर्म सम्पादन करनेके लिये उद्यत हुए। तदनन्तर सभी लोग मिलकर, नये वस्त्र पहनाकर और सुसज्जित विमानपर बैठाकर शवको कावेरी तीरवर्ती श्मशानकी ओर ले चले। श्रीरङ्गनगरके रहनेवाले समस्त नर-नारी शवके साथ गये। श्मशान भूमि मनुष्योंसे पूर्ण हो गई।

—***—

अष्टम अध्याय

देह-दर्शन

गुरुके चरण-कमलोसे विदा होकर श्रीमहापूर्णने काञ्चीपुरकी यात्रा की। वे दिन-भर चले ही जाते थे। रात होनेपर वे किसी भाग्यवानके घरपर ठहर-कर रात बिताते थे। इस प्रकार चलते-चलते चौथे दिन वे काञ्ची पहुँचे। वहाँ उन्होने श्रीवरदराजका दर्शन करके श्रीकाञ्चीपूर्णसे भेंट की। उस समय सन्ध्या हो गई थी। महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्णने उनके आनेका कारण जानकर उस रात्रिको अपने ही आश्रममे रहनेके लिये उनसे अनुरोध किया। अनेक प्रकारके वार्तालापकर और रात्रि बिताकर दूसरे दिन प्रात काल ही श्रीमहापूर्ण श्रीकाञ्ची-पूर्णके साथ मन्दिरकी ओर चले।

मार्गमे घडा लिये दूर ही से श्रीरामानुजको उन्होने आते देखा। श्रीकाञ्ची-पूर्णने कहा—"मन्दिरमें जानेका समय हो गया, अत मैं जाता हूँ। आप श्रीरामानुजसे अपना अभिप्राय प्रकाशित करे।" इतना कहकर वे चले गये। श्रीमहापूर्ण दूर ही से घडा लिये हुए, परम मनोहर दिव्यकान्तियुक्त, विष्णु-भक्तिका एकमात्र आश्रय मनुष्याकार उस देवताको देखकर पुलकित हो गये। उनके मुखसे अकस्मात् भगवद्गुणावली निकलने लगी :—

वशी वदान्यो गुणवानृजु· शुचि-
मृदुर्दयालुर्मधुर स्थिर सम ।

ती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावत
समस्त कल्याण गुणामृतोदधि ॥

क्रमश श्रीरामानुज उनके समीप आये। श्रीमहापूर्णने आनन्दोन्मत्त होकर भगवान्‌के चरण कमलोंमे प्रणाम किया —

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये,
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये,
नमो नमोऽनन्त दयैकसिन्धवे ॥

उन्होने श्रीयामुनाचार्य-रचित और भी कई श्लोक पढे। उनके समीप आकर श्रीरामानुज खड़े हुए और एकाग्रचित्तसे श्रवण करने लगे। अनन्तर बडी नम्रतासे उन्होने पूज्य वेषधारी वयोवृद्ध महात्मासे पूछा—"इन अलौकिक श्लोकोका रचयिता कौन है ? मैं उसको बार-बार नमस्कार करता हूँ। और आपके समान महात्माको भी बार-बार नमस्कार। आज मेरा दिन बड़े सौभाग्यका है ; क्योकि आपके पवित्र मुखसे इन पवित्र कथाओंको सुनकर मैं अपनेको पवित्र समझता हूँ।" श्रीमहापूर्णने कहा—"ये श्लोक हमारे प्रभु श्रीयामुनाचार्यके बनाये हैं।" श्रीयामुनाचार्यका नाम सुनकर श्रीरामानुजने बड़े आग्रहसे पूछा—"महोदय ! मैंने सुना है, महर्षि पीड़ाग्रस्त थे, उनका शरीर सकुशल तो है ? कितने दिनोसे आपने महर्षिके चरण-कमलोंका दर्शन नहीं किया है।" श्रीमहापूर्णने कहा—"मैं अभी वहींसे आ रहा हूँ। जब मैं वहाँसे चला था, तब महाप्रभुका शरीर नीरोग था।" श्रीरामानुजने कहा—"आपके यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है ? आज आप प्रसाद ग्रहण कहाँ करेंगे ? यदि किसी प्रकारकी आपत्ति न हो, तो आज इसी दासके घर प्रसाद ग्रहणकर दासको

कृतार्थ करें, मेरी यही प्रार्थना है।" श्रीमहापूर्णने कहा—"जिनके लिये महर्षि श्रीयामुनाचार्य सर्वदा चिन्तित रहते हैं, उनसे बढकर कृतार्थ और भाग्यवान् और कौन हो सकता है? महात्मन्! अपने प्रभुकी आज्ञासे मैं तुम्हारे ही पास आया हूँ।" श्रीरामानुजने विस्मित होकर कहा—"हमारे समान अति क्षुद्र मनुष्यको उस देव-तुल्य महात्माने स्मरण किया है! क्या मैं उनके स्मरण करने योग्य हूँ? किस अभिप्रायसे महर्षिने मुझे स्मरण किया है?" श्रीमहापूर्णने कहा—"मेरे प्रभु तुमको देखना चाहते हैं, इसीलिये उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजा है। उनका शरीर रोगोंके कारण जीर्ण-शीर्ण हो गया है। इस समय वे कुछ सुस्थ है। अत यदि उनकी इच्छा पूरी करनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो, तो शीघ्र ही यहाँसे उनके दर्शन करनेके लिये चलना चाहिये।" इस सवादको सुनकर श्रीरामानुज बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने श्रीमहापूर्णसे कहा—"आप थोड़ी देर ठहरे। मैं इस भरे हुए घडेको मन्दिरमें रख आऊँ, तब श्रीरगजीकी यात्रा करूँगा।" यह कह बड़ी शीघ्रतासे श्रीरामानुज मन्दिरकी ओर चले। श्रीयामुनाचार्यके प्रति श्रीरामानुजकी स्वाभाविक भक्ति देखकर श्रीमहापूर्ण विस्मित हुए और इस प्रकारके शुद्ध भक्तके साथ वार्तालाप करनेके कारण उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। उन्होंने कहा —

तव दास्य सुखैक सङ्गिना
भवनेष्वस्त्वयि कीट जन्म मे,
इतरावसथेषु मास्म भूद-
पि ये जन्म चतुर्मुखात्मना।

बहुत शीघ्र श्रीरामानुज लौट आये और चलनेके लिये प्रस्तुत हुए।

श्रीमहापूर्णने पूछा—"घरमे कहवा दिया ? तुम्हारे न रहनेपर घरके किसी काममे दिक्कत न पड़े, इसके लिये भी तो प्रबन्ध करना आवश्यक है।" श्रीरामानुजने कहा—"पहले भगवान् और भगवानके भक्तोकी आज्ञा है, तदनन्तर घर है। मेरा चित्त श्रीयामुनाचार्यजीके दर्शनके लिए विशेष उत्कण्ठित हो रहा है। आप शीघ्र ही चलनेकी आज्ञा दें।" यह सुनकर श्रीमहापूर्ण आनन्दसे अधीर हो गये। वे श्रीरामानुजको आलिङ्गन करके परम आनन्दका उपभोग करने लगे। दोनो महापुरुषके दर्शनके लिये व्यग्र थे ही, इसलिये वे बड़ी शीघ्रतासे चलने लगे। वे दोनों चौथे दिन कावेरीके तीरपर वर्तमान श्रीत्रिशिर पल्ली (Trichinopaly) मे पहुँचे। वे शीघ्र ही कावेरीको पारकर श्रीरगनाथजीके मन्दिरके समीपस्थ मठकी ओर चलनेको उद्यत हुए। उसी समय मनुष्योंकी भीड़ सामने देखकर उन लोगोने पूछा—"यह इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हुई है ?" एक आदमीने उत्तर दिया—"महाशय, क्या कहूँ, पृथिवी आज अपने सबसे अच्छे अलकारसे शून्य हो गई! महात्मा आलवन्दारको परमपद लाभ हुआ है।"

यह सुनते ही चेतनाशून्य होकर श्रीरामानुज भूमिपर गिर पडे और श्रीमहापूर्ण उच्चस्वरसे रोने तथा सिर पीट-पीटकर कहने लगे—"प्रभो! दासको क्या इसी प्रकार छला जाता है ? क्या इसीलिये आपने हमें श्रीकाञ्चीपुर भेजा था ?" थोड़ी देर पश्चात् सज्ञायुक्त और शोक सवरण करके उन्होने चेतनाशून्य श्रीरामानुजकी ओर देखा। तब उन्होने जल लाकर उनकी मूर्छा दूर की और उन्हे समझाते हुए कहा—"बेटा, क्या करोगे ? जो भवितव्य है, वही होता है। यह सब नारायणकी इच्छा है। जिस महापुरुषके लिये हम लोग व्याकुल हुए हैं, उन्हींके कथनानुसार जो-कुछ होता है, वह मङ्गलके लिये ही

होता है। श्रीमन्नारायणकी इच्छाके अनुगामी होनेका उपदेश उन्होंने बार-बार हम लोगोंको दिया है। उनके परमधाम चले जानेपर उनके उपदेशोंको अमान्य करना हम लोगोंको कभी उचित नहीं है। चलो, समाधि-गर्भमे अदृश्य होनेके पहले उनके पवित्र शरीरका दर्शन कर ले।" श्रीरामानुज किसी प्रकार धैर्य धारणकर श्रीमहापूर्णके पीछे-पीछे चले। वे शीघ्र ही शिष्ययुक्त आलवन्दारके शरीर-मन्दिरके पास पहुँचे। उन्होंने देखा, महापुरुष दीर्घ निद्रामे पड़े हैं। उन्हे देखते ही श्रीमहापूर्ण उनके पैरोपर गिरकर रोने लगे। श्रीरामानुज स्तब्ध होकर चित्र-लिखेके समान खड़े हो गये। उनकी आँखोसे अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी।

कुछ कालके पश्चात् दोनोंका शोक कम हुआ। श्रीरामानुज टकटकी लगाये उस परम पवित्र श्रीयामुनाचार्यके शरीरको देखने लगे। समस्त सुन्दरताको हरण करनेवाली मृत्युकी छाया उनके पवित्र शरीरपर नहीं पड़ी थी। भला मृत्युकी क्या शक्ति है कि वह भगवद्भक्तको स्पर्श करे! स्थिर दृष्टिसे श्रीरामानुज उनकी ओर देख रहे हैं। भीतर-ही-भीतर मानों दोनो आपसमे कुछ बातचीत कर रहे हैं। सभी चुपचाप खड़े हैं। उतनी बड़ी भीड़मे कोई भी कुछ नही बोलता। सभी खड़े-खड़े उस युगल मूर्त्तिका—जीवित और मृतका—अपूर्व समागम देखने लगे।

कुछ कालके उपरान्त श्रीरामानुजने पूछा—"देखता हूँ, महर्षिके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। क्या ये पहले भी ऐसी ही रहती थी?" पार्श्वस्थ शिष्योंने कहा—"नहीं, पहले तो अँगुलियाँ समान भावसे सीधी थीं। इस समय टेढी हो जानेका कारण हम लोग कुछ भी नही समझ सकते।" यह सुनकर श्रीरामानुजने गम्भीर स्वरमें कहा—

अह विष्णुमते स्थित्वा जनानज्ञानमोहितान् ।
पञ्च सस्कारसम्पन्नान् द्राविड़ाम्नाय परगान्,
प्रपत्ति धर्म निरतान् कृत्वा रक्षामि सर्वदा ॥

—मैं विष्णु-मतमे स्थित रहकर अज्ञान-मोहित मनुष्योको पञ्च सस्कार-युक्त द्राविड़ वेद-विशारद और नारायणके शरणागत करके उनकी रक्षा करूँगा ।

यह कहते ही श्रीयामुनाचार्यकी एक अँगुली सीधी हो गई । श्रीरामानुजने पुन कहा—

सगृह्य निखिलानर्थान् तत्वज्ञान पर शुभम् ।
श्रीभाष्यञ्च करिष्यामि जनरक्षण हेतुना ॥

—मैं लोक-रक्षाके लिए समस्त अर्थोंका सग्रह करके मङ्गलमय, तत्त्वप्रतिपादक श्रीभाष्यकी रचना करूँगा । यह कहते ही दूसरी अँगुली भी खुलकर सीधी हो गई । पुन श्रीरामानुजने कहा—

जीवेश्वरादीन् लोकेभ्य कृपया य पराशर ।
सदर्शयन् तत्स्वभावान् तदुपायगतीस्तथा ।
पुराणरत्न सचक्रे मुनिवर्य कृपानिधि ।
तस्य नाम्ना महाप्राज्ञ वैष्णवस्य च कस्यचित् ॥
अभिधान करिष्यामि निष्क्रयार्थं मुनेरहम् ।

—जिस कृपालु मुनिश्रेष्ठ पराशरने लोकोंके प्रति दयावश होकर जीव, ईश्वर, जगत्, उनका स्वभाव और उनकी उन्नतिके उपायको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए पुराणरत्न विष्णुपुराणकी रचना की थी, उनका ऋण परिशोध करनेके लिए मैं एक किसी महापण्डित वैष्णवको उनके नामसे प्रख्यात करूँगा । इतना कहते ही बची हुई अँगुली भी सीधी हो गई । यह देखकर सभी चकित हुए और समय

पाकर यही युवक आलवन्दारके आसनको ग्रहण करेगा, इसमे किसीको सन्देह नहीं रहा ।

श्रीयामुनाचार्यके शरीरको समाधि देनेके पहले ही श्रीरामानुजने काञ्चीपुरकी यात्रा की । आलवन्दारके शिष्योने उन्हें श्रीरंगनाथजीके दर्शन करनेके लिए कहा , परन्तु उन्होने अश्रुकी धारा बहाते हुए कहा--"जिस भगवान्ने मेरा अभीष्ट पूरा नहीं किया, जिसने हमारे आराध्यदेवको सदाके लिए हर लिया, मैं ऐसे निष्ठुर भगवान्का दर्शन नही करना चाहता ।" इतना कहकर श्रीरामानुज स्वदेशके लिए प्रस्थित हुए । उसी दिनसे उनकी स्वाभाविक हँसी न मालूम किधर चली गई । वे यथासमय काञ्चीमे जाकर उपस्थित हुए । उनकी बाल्य चपलता नष्ट हुई, उसके बदले गम्भीरता और चिन्ताशीलता उपस्थित हुई । अब वे अपना अधिकाश समय एकान्तमे रहकर बिताने लगे और अपनी स्त्रीका साथ तक छोड़नेके लिए प्रयत्न करने लगे । केवल श्रीकाञ्चीपूर्णके साथ रहनेमे उनका कुछ आनन्द प्राप्त होता था ।

नवम अध्याय

मंत्र-रहस्य-दीक्षा

इस वज्रपातके लगभग छ महीने पहले श्रीरामानुजको एक और कठिन वेदना भोगनी पडी थी। पुत्र-प्राण-सती कान्तिमतीने पुत्र-स्नेहके बन्धनको काटकर पतिलोकको प्रस्थान कर दिया था। इस समय श्रीरामानुजकी स्त्री तजमाम्बापर ही सब गृहकृत्यका भार था। वे परम सुन्दरी थीं। स्वाभाविक पतिभक्तिके रहनेपर भी अपने शरीर-सस्कार और शृगारकी ओर उनकी विशेष दृष्टि थी। अपने स्वार्थमे किसी प्रकारकी त्रुटि न होनेपर, वे सेवा-सुश्रूषा द्वारा पतिको यथासम्भव प्रसन्न और सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया करती थीं।

श्रीरगजीसे लौटनेके समयसे श्रीरामानुजको घरके कामोंमे उदासीन देख कर तजमाम्बाका हृदय भीतर-ही-भीतर तड़प रहा था। वे अपने मनके भावको छिपानेके लिए विशेष यत्न करती थीं। हृदयकी क्रोधाग्निको किसी प्रकार वे बाहर निकलने नहीं देती थीं।

श्रीरामानुज सर्वदा प्राय श्री काञ्चीपूर्णके साथ ही रहा करते थे। उनका मन सर्वदा मलिन ही रहा करता था। यह देखकर एक दिन श्रीकाञ्चीपूर्णने उन्हे समझाते हुए कहा—"बेटा, हृदयमे दु:खको स्थान न दो। श्रीवरदराजकी भक्ति कर उनकी सेवाके लिए जिस प्रकार प्रतिदिन जल लाते हो, उसी प्रकार लाया

करो। भगवान्के प्रसादसे सभी मङ्गल होगा। आलवन्दारके कार्य समाप्त हो गए हैं। इसी कारण उन्होंने नित्य शान्तिके लिए भगवानके चरणोंमें आश्रय लिया है। उनके सामने तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसका सम्पादन करनेका प्रयत्न करो।" श्रीरामानुजने कहा—"आप मुझे शिष्य करें। आप मुझे अपने चरणोंकी छायामें विश्राम करनेकी आज्ञा दें।" इतना कहकर श्रीरामानुजने उनके सामने साष्टाग प्रणाम किया। श्रीकाञ्चीपूर्णने उठाकर कहा—"आप इस प्रकार घबराते क्यों हैं? आप ब्राह्मण हैं और मैं शूद्र हूँ। ब्राह्मणको मन्त्र देनेका वैश्यको अधिकार नहीं है। फिर कभी मेरे सामने इस प्रकार प्रणाम न करना। श्रीमन्नारायण शीघ्र ही तुम्हारे लिए गुरु भेजेंगे। इसके लिए चिन्ता करनेकी क्या अवश्यकता है?" यह कहकर श्रीकाञ्चीपूर्ण मन्दिरकी ओर चले गये।

श्रीरामानुजने मन-ही-मन सोचा कि ये हमको हीन अधिकारी समझकर दया नहीं करते हैं। जो हो, मैं उनका उच्छिष्ट भोजन करके अपने आत्माको प्रसन्न करूँगा। जो श्रीवरदराजके साथ सर्वदा विहार करते हैं, उनके जाति, कुल आदिके विचारसे लाभ क्या? उनकी दयासे चाण्डाल भी ब्राह्मणकी अपेक्षा अधिकतर शुद्ध हो जाता है। यह सोचकर उसी दिन सन्ध्याको वे श्रीकाञ्चीपूर्णके पास गये और उन्होंने दूसरे दिन अपने यहाँ मध्याह्नके भोजनके समय भोजन लिए श्रीकाञ्चीपूर्णको निमन्त्रित किया। श्रीकाञ्चीपूर्णने निमन्त्रण ग्रहण किया और कहा—"कल मैं आपके समान परम भक्तका अन्न खाकर अपने राजसिक और तामसिक आवरणको नष्ट कर दूँगा। इन आवरणोंके नष्ट होनेपर श्रीवरद-राज कभी मेरी दृष्टिसे बहिर्भूत न हो सकेंगे। अहा, कैसा हमारा परम सौभाग्य है!"

श्रीरामानुजने वहाँसे लौटकर अपनी स्त्रीसे दूसरे दिन प्रात काल उत्तम भोजन बनानेके लिए कहा , क्योंकि उन्होने श्रीकाञ्चीपूर्णको निमन्त्रण दिया है । दूसरे दिन प्रात काल उठकर तजमाम्बाने स्नान करके पाक बनाना प्रारम्भ किया । एक पहर दिन चढते-न-चढ़ते ही तजमाम्बाने भोजन बनाकर तैयार किया । यह देखकर श्रीरामानुज बडे प्रसन्न हुए और श्रीकाञ्चपूर्णको लिवा लानेके लिए उनके आश्रमकी ओर चले ।

इधर श्रीवरदराज-सेवक श्रीकाञ्चीपूर्ण श्रीरामानुजका अभिप्राय समझकर दूसरे मार्गसे उनके घरपर उपस्थित हुए और तजमाम्बाको सम्बोधन करके उन्होंने कहा—"माता, आज हमे शीघ्र ही मन्दिरमे जाना होगा । जो-कुछ बेना हो, वही मुझे दे दो । मैं ठहर नहीं सकता । आपके पति कहाँ हैं ?" यह सुनकर तजमाम्बाने कहा—"महात्मन्, वे आप ही को ढूँढ़नेको गए हैं, आते ही होंगे । थोड़ी देर आप ठहरें ।" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"नहीं माता, मैं एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकता । मैं अपना पेट भरनेके लिए प्रभुकी सेवाका तिरष्कार नहीं करूँगा ।" यह सुनकर, अभ्यागत फिर न जाय इस डरसे तजमाम्बाने आसन और जल रख दिये । पुन· उन्होंने बनाये हुए पदार्थ एक-एक करके परोसकर बड़ी श्रद्धासे उन्हे भोजन कराया । भोजन करके श्रीकाञ्चीपूर्णने स्वय उच्छिष्ट पत्तल, दोने आदि फेंके और उस स्थानको गोमयसे लीप दिया । तदनन्तर वे तजमाम्बाको प्रणाम करके विदा हुए । गृहिणीने भोजनके अवशिष्ट अश शूद्रोको देकर और बर्तनोको माँज-धोकर साफ किया और स्नान करके वे पुन· पतिके लिए भोजन बनाने लगीं ।

श्रीरामानुजने लौटकर देखा कि उनकी स्त्री सद्य स्नान करके पुन भोजन बना रही है और जो-कुछ पाक बना था, अब उसमे कुछ भी नहीं बचा है ।

उन्होंने विस्मित होकर स्त्रीसे पूछा—"क्या श्रीकाञ्चीपूर्ण आये थे ? तुम पुन: पाक क्यों बनाती हो ? प्रात काल जो बनाया था, वह कहाँ गया ?" तजमाम्बाने उत्तर दिया—"महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्ण आये थे । मैंने उनको तुम्हारे लिए ठहरने को कहा था , परन्तु भगवान्‌की सेवाके लिए शीघ्र ही मन्दिरमें जाना है, यह कहकर उन्होंने ठहरना स्वीकार नहीं किया । अत मैंने जो-कुछ सामग्री बनाई थी, वह उनको परोस दी थी । भोजन करके उन्होंने स्वय स्थान भी साफ कर दिया है । जो-कुछ पाक बचा था, उसे मैंने शूद्र पडोसिनको दे दिया और अब आपके लिए स्नान करके भोजन बना रही हूँ। क्योंकि अवरवर्णका भुक्तावशिष्ट पाक आपको किस प्रकार दूँ ?" इससे श्रीरामानुजको बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने कहा—"मूर्खे ! तुझे किसी कार्य-अकार्यका विचार नहीं है। तूने महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्णके प्रति शूद्रोंका-सा व्यवहार किया है। हमारे भाग्यमें उस महापुरुषका प्रसाद नहीं लिखा है। मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ !" यह कहकर श्रीरामानुज अत्यन्त दु खी होकर घरके बाहर आ एक वृक्षके नीचे बैठ गये ।

इधर श्रीकाञ्चीपूर्ण भगवान् श्रीवरदराजपर पखा करते-करते उनसे कहने लगे—"प्रभो, तुम्हारी यह कैसी रीति है ? मैं तुम्हारी और तुम्हारे भक्तोकी सेवा करके जीवन बिताना चाहता हूँ , परन्तु ऐसा न कर आपने हमे एक महापुरुष बना दिया ! साक्षात् शेषावतार श्रीरामानुज हमारे सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। हमारे उच्छिष्ट भोजनके लिए उत्कण्ठित होकर उन्होंने आज हमे निमन्त्रित किया था । कहाँ रही तुम्हारी और तुम्हारे भक्तोंकी सेवा, यहाँ मैं स्वय ही पूज्य बन गया ! यदि आप आज्ञा दें, तो तिरुपति जाकर मैं आपकी बालाजीकी मूर्त्तिकी सेवा करूँ।" श्रीवरदराजने आज्ञा दे दी । श्रीकाञ्चीपूर्णने तिरुपतिमें जाकर छ. महीने बिता दिए । अनन्तर एक दिन श्रीनारायणने

कहा—"काञ्चीपुरमें गरमीसे हमको बड़ा कष्ट होता है। तुम वहीं जाकर मेरी सेवा करो।" भगवान्‌की ऐसी आज्ञा सुनकर श्रीकाञ्चीपूर्ण पुन काञ्चीके लिए प्रस्थित हुए।

इधर तैल-स्नानके दिन एक दुबला-पतला शूद्र दास श्रीरामानुजकी सेवाके लिए आया। उसको देखकर श्रीरामानुजको बड़ी दया आई। उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—"यदि घरमे कुछ बासी अन्न हो, तो लाकर इसे दे दो। इसको देखनेसे मालूम पड़ता है कि तीन-चार दिनसे भोजन नहीं किया।" गृहिणीने उत्तर दिया—"घरमे इस समय कुछ भी नहीं है। इतने सबेरे भोजन कहाँसे आये?" यह कहकर वे स्नान करनेके लिए चली गई। श्रीरामानुजने स्त्रीकी बातोंपर विश्वास न कर स्वय रसोईघरमे जाकर देखा, तो बहुत-सा अन्न बचा हुआ रखा था। उन्होंने उसे भोजन कराकर तैल मर्द्दन करनेकी आज्ञा दी।

श्रीकाञ्चीपूर्ण तिरुपतिसे लौट आये हैं, यह सुनकर श्रीरामानुज उनके दर्शनके लिए गये। बहुत दिनोंपर परम मित्रको देख उनके आनन्दकी सीमा न रही। वे दोनों एक-दूसरेको देखकर बडे प्रसन्न हुए। अनेक प्रकारकी बातचीत करके श्रीरामानुजने श्रीकाञ्चीपूर्णसे कहा—"महात्मन्, कतिपय सन्देह मेरे हृदयको हिलोड़ रहे हैं। आप श्रीवरदराजसे कहकर मेरे सन्देहोंको दूर कर दीजिए, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो। मैं बडा कष्ट भोग रहा हूँ। आपको छोड़कर मैं दु खकी बात और किससे कहूँ?" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"मैं इस विषयमें प्रभुसे निवेदन करूँगा।"

दूसरे दिन श्रीरामानुजके आनेपर श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"बेटा, तुम्हारे विषयमे भगवान श्रीवरदराजने यह आज्ञा दी है —

अहमेव परब्रह्म जगत्कारण कारणम् ।
क्षेत्रज्ञेश्वरयोर्भेद सिद्ध एव महामते ॥
मोक्षोपायो न्यास एव जनाना मुक्तिमिच्छताम् ।
मद्भक्ताना जनानाञ्च नान्तिमस्मृतिरिष्यते ॥
देहावसाने भक्ताना ददामि परम पदम् ।
पूर्णाचार्य महात्मान समाश्रय गुणाश्रयम् ॥
इति रामानुजाचार्य मयोक्त वद सत्वरम् ॥

—(१) मै ही जगत्कारण प्रकृतिका कारण परब्रह्म हूँ। (२) हे महामते, जीव और ईश्वरका भेद स्वत सिद्ध है। (३) मुमुक्षु मनुष्योंका भगवानके चरण-कमलोंमे आत्म-समर्पण करना ही मुक्तिका कारण है। (४) मेरे भक्त अन्तिम समयमे मेरा स्मरण न भी करें, तथापि उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है। (५) देह त्याग करनेपर हमारे भक्तगण परमपद प्राप्त करते हैं। (६) सर्वगुण-सम्पन्न महात्मा श्रीमहापूर्णका आश्रय ग्रहण करो। मेरा यह सन्देसा शीघ्र श्रीरामानुजाचार्यको जाकर सुनाओ।"

यह सुनकर श्रीरामानुज उन्मत्तके समान नृत्य करने लगे। उन्होने श्रीवरदराजके मन्दिरके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनके हृदयमे जो छ. सन्देह उन्हें व्याकुल कर रहे थे, वे सब नष्ट हो गये। श्रीकाञ्चीपूर्णके सामने श्रीरामानुजने अपने सन्देह नहीं कहे थे। श्रीकाञ्चीपूर्ण सत्य-ही-सत्य श्रीवरदराजके मुखस्वरूप थे। निषेध करते रहनेपर भी श्रीरामानुजने श्रीकाञ्चीपूर्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया, और प्रात काल घर न जाकर वे श्रीरगजीमें श्रीमहापूर्णके निकट दीक्षित होनेके लिए चले।

आलवन्दारके परमधाम जानेपर इधर श्रीरगम् मठमे उस प्रकार सुमधुर

भावसे शास्त्रोंके रहस्यार्थकी व्याख्या करनेवाला कोई नही है। मठके अध्यक्ष तिरुवराङ्ग बनाये गये है। वे परम भागवत् और बहुशास्त्रदर्शी थे, तथापि शास्त्रोंकी व्याख्यामे उनको वैसी निपुणता प्राप्त नही थी। उनका अधिक समय भगवत् सेवामे ही व्यतोत होता था। उनके परम दास्य भावको देखकर सभी प्रसन्न थे। दूसरोंको आज्ञा देना दूर रहा, वे स्वय दूसरोंकी आज्ञा-पालन करनेके लिए व्यग्र थे। उनके देवतुल्य स्वभावसे सभी उनके वशीभूत थे। मठमे विवाहित और अविवाहित दोनो प्रकारके भक्त रहते थे। विवाहित भक्तोंकी स्त्रियाँ मठसे बाहर नगरमे रहा करती थीं। बीच-बीचमे वे भक्तोंके दर्शन करनेके लिए मठमे भी आती थीं। मठमें रहनेवाले भक्त भगवदाराधन और भगवन्नामकीर्तन द्वारा दिन व्यतीत करते थे। इसी प्रकार प्राय एक वर्ष बीत गया। अनन्तर एक दिन तिरुवराङ्गने समस्त भक्तोंको एकत्रित करके कहा—"आज एक वर्ष हुआ कि हम लोगोके परमाराध्य प्राण-स्वरूप महात्मा श्रीयामुनाचार्य परमपदमें लीन हो गये। तबसे हम लोग उस मधुर भाषामे भगवत् गुणकीर्तन और शास्त्रीय गूढ मर्मोंकी व्याख्या सुननेसे वञ्चित हुए हैं। यद्यपि उस महापुरुषने आप लोगोकी देख-रेखका भार इस क्षुद्र दासको सौंपा है, तथापि मेरे समान हीन बल व्यक्ति ऐसा भार वहन नहीं कर सकता। आप लोगोंको स्मरण होगा कि महामुनिने देह त्याग करनेके पूर्व काञ्चीपुरस्थ श्रीरामानुजके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की थी और उनको बुलानेके लिए महापूर्णको वहाँ भेजा था। मेरी विवेचनासे वे ही शुद्ध सत्व महापुरुष इस भारको वहन करनेके योग्य हैं। हम लोगोंमे से कोई जाकर उन्हे पञ्च सस्कारयुक्त करके यहाँ ले आवें। वे ही यामुनमुनिके मतका समग्र भारतवर्षमे प्रचार करेंगे। समाधिके समय उनकी प्रतिज्ञा और मुनिवरका मुष्टिमोचन इस समय भी मैं अपनी आँखोके सामने देख रहा हूँ।"

एकत्रित भक्तमण्डलीने एक स्वरसे उनकी बातोका अनुमोदन किया और श्री रामानुजको दीक्षा देकर श्रीरग ले आनेके लिए श्रीमहापूर्णको भेजा। श्रीमहापूर्णके जानेके समस उन्होंने कहा—"यदि उनकी इच्छा श्रीकाञ्चीपूर्णका सहवास त्याग करनेकी न हो, तो उनके आनेके लिए विशेष अनुरोव न करना। श्रीरगनाथकी इच्छासे उन्हे यहाँ आना ही पड़ेगा—चाहे शीघ्र हो या विलम्बसे। तुम उनको द्राविड़ प्रबन्ध पढ़ाकर उनमे उन्हे विशेष निपुण बनाना। इसके लिए तुम्हें कमसे कम एक वर्ष वहाँ ठहरना पडेगा। हम लोगोंकी इच्छा है कि तुम अपनी स्त्रीको भी साथ लिए जाओ और हम लोगोने तुम्हे श्रीरामानुजको लेनेके लिए भेजा है, यह उनको किसी प्रकार मालूम न पडे।" यथासमय श्रीमहापूर्णने स्त्रीके साथ काञ्चीके लिए यात्रा की। दो दिन चलनेके उपरान्त वे मदुरान्तकके समीप पहुॅचे। उस नगरके विष्णु-मन्दिरके सामने एक बहुत बड़ा तालाब है, उसी तालाबके किनारे श्रीमहापूर्ण और उनकी स्त्रीने विश्राम किया। उसी समय उन्होने देखा कि जिसके लिए वे मठ छोड़कर काञ्चीपुर जा रहे हैं, जिनका दर्शन करनेके लिए उनका चित्त व्याकुल हो रहा है, उन्हीं श्रीरामानुजने स्वय आकर उनको प्रणाम किया। सहसा स्नेहीको सामने देखकर वे आनन्द-विह्वल हो गए। तदनन्तर श्रीरामानुजको आलिङ्गन करके उन्होंने कहा—"वत्स! मैं तुम्हे यहाँ देख सकूँगा, ऐसी आशा मुझे न थी।" श्रीरामानुजने कहा—"यह सब श्रीमन्नारायणकी कृपा है। मैंने आपके ही चरण-कमलोंके दर्शनके लिए काञ्ची छोड़ी है। श्रीकाञ्चीपूर्णके मुखसे भगवान श्रीवरदराजने आपको ही मेरा गुरु बतलाया है। अत कृपया आप मुझे दीक्षा दे।" श्रीमहापूर्णने कहा—"चलो, काञ्चीपुरमें श्रीवरदराजके सामने हम लोग इस शुभ कर्मका सम्पादन करें।" श्रीरामानुजने कहा—"महात्मन, हमको एक मुहूर्तका भी विलम्ब असह्य मालूम पड़ता है।

स्वपन्त वापि भु जान गच्छन्तमपि वर्त्मनि ।
युवानमपि बाल वा स्ववशे कुरुते विधि ॥

—देखिये, मृत्युका कुछ ठिकाना नहीं है । मनुष्य सोता हो, भोजन करता हो, मार्गमें जाता हो, युवा हो, चाहे बालक हो, मृत्यु सब अवस्थाओंमे ही उसको अपने वशमे कर लेती है । आपके साथ कितनी आशा करके मैं श्रीयामुनाचार्यका दर्शन करनेके लिए गया था , परन्तु हाय, दग्धविधिके कारण क्या वह आशा पूरी हुई ? इस समय भी उसका क्या विश्वास है । अत आप इसी समय मुझे अपने चरणोंमे आश्रय दें ।" श्रीमहापूर्ण इस वैराग्यपूर्ण उक्तिको सुनकर बड़े आनन्दित हुए, और उन्होने उसी विष्णु-मन्दिरके सन्मुख विशाल सरोवरके तीर शाखा-प्रशाखा विशिष्ट वकुल-वृक्षके नीचे यथाविधि अग्नि प्रज्वलित करके उसमे दो लौह मुद्राएँ रखीं । उनमे एक शखमुद्रा और दूसरी चक्रमुद्रा थी । दोनों मुद्राओंके उत्तप्त होनेपर मन्त्र उच्चारण करके श्रीमहापूर्णने चक्रमुद्राके द्वारा श्रीरामानुजका दक्षिण बाहुमूल और शखमुद्राके द्वारा वामबाहुमूल अकित किया । तदनन्तर आलवन्दारके श्रीचरणोंका ध्यान करके उनके दक्षिण कर्णमे वैष्णव मन्त्र उपदेश किया । इस प्रकार दीक्षित होकर श्रीरामानुज विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणामकर गुरु और गुरुपत्नीके साथ काञ्चीपुर आये ।

श्रीकाञ्चीपूर्ण श्रीमहापूर्णके आनेका शुभ सवाद सुनकर उनके दर्शन करनेके लिए आये । भक्तोंके सम्मिलनसे वहाँ अद्भुत आनन्दका श्रोत प्रवाहित हुआ । श्रीरामानुजके कहनेसे श्रीमहापूर्णने उनकी स्त्री तजमाम्बाको भी शख-चक्र द्वारा अकित किया । इस प्रकार पति और पत्नीने दीक्षित होकर श्रीमहापूर्णका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया । श्रीरामानुजने अपने घरके आधेमे श्रीमहापूर्णके रहनेके लिए प्रबन्ध कर दिया । उनका समस्त गृहभार वे स्वय वहन करते थे और प्रतिदिन उनके समीप बैठकर द्राविड़ पाठ करते थे ।

दशम अध्याय

संन्यास

इस प्रकार छ महीने बीत गये। एक दिन श्रीमहापूर्ण और श्रीरामानुज दोनो ही किसी कामके लिये घरसे बाहर गये थे। घरमे तजमाम्बा स्नान करके भोजन बनानेकी तैयारी करती थी। रसोईकी सब सामग्री एकत्रित करके वह जल भरनेके लिए घडा लेकर कुँएपर गई। इसी समय महापूर्णकी स्त्री भी रसोईके लिए जल लाने उसी कुँए पर गई। दोनोंने एक ही समय अपना-अपना घड़ा कुएँमें डाला और दोनो साथ ही जल खींचने लगीं। खींचनेके समय महापूर्णकी स्त्रीके घडेका जल तजमाम्बाके घड़ेपर पड़ा। इससे तजमाम्बा बहुत क्रुद्ध हुई और उसने झिटककर गुरुपत्नीसे कहा—"क्या तुम्हारी आँखें सिरपर चढ गई हैं? देखो, तुम्हारी असावधानीके कारण मेरा एक घड़ा जल नष्ट हो गया। गुरुकी स्त्री हो, इससे क्या तुम सिरपर चढ जाओगी? क्या तुम्हे मालूम नहीं है कि तुम्हारे पितासे हमारे पिता कितने उच्च कुलीन हैं? तुम्हारा छुआ हुआ जल हमारे किस काम आवेगा? मूर्ख पतिके हाथ पड़कर मैंने जाति-कुल सभी गँवाया!" इस कटूक्तिको सुनकर श्रीमहापूर्णकी स्त्रीने अति विनयसे क्षमा-प्रार्थना की। वे स्वभावसे ही शान्त और सुशीला थीं। यद्यपि इन बातोंको सुनकर उन्हे बड़ा कष्ट हुआ था, तथापि उसे छिपाकर वे घर चली आई और

घड़ा रखकर रोने लगी। थोडी देर बाद श्रीमहापूर्ण आये। उन्होने स्त्रीसे रोने का कारण पूछकर सब जान लिया और कहा—"नारायणकी अब ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं यहाँ रहूँ। इसी कारण तजमाम्बाके मुखसे उन्होने कड़ी बाते तुम्हे सुनवाई हैं। दु खी होनेकी अवश्यकता नहीं है। प्रभु जो-कुछ करते हैं, सभी मङ्गल ही के लिए करते है। चलो, अब शीघ्र ही चलकर हम लोग भगवान् श्रीरगनाथका दर्शन करे। बहुत दिनोसे उनके चरणोकी सेवा नहीं की है। इसी कारण तुम्हे कडी बातें सुननी पडी हैं।"

दीक्षित होनेके अनन्तर श्रीरामानुजके समस्त कष्ट दूर हो गये। उन्होने याण, अकन, ऊर्ध्वपुण्ड्र, मन्त्र और दास्य नामक इन पच सस्कारोसे सस्कृत होने पर अपनेको कृतार्थ समझा। श्रीमहापूर्णकी ही दयासे उन्होने परम शान्ति पाई थी। अत श्रीमहापूर्णके समान जगत्मे उनका और कौन हितकारी हो सकता है, यह उन्होंने खूब समझ लिया था। इस कारण वे अपने गुरुको श्रीनारायण समझते थे। उनकी गुरुभक्तिकी तुलना नही थी। गुरुका उच्छिष्ट प्रसाद बिना लिये कभी वे भोजन नहीं करते थे। प्रतिदिन प्रात काल उठते ही वे गुरुको साष्टाग प्रणाम करते थे। तदनन्तर प्रात कृत्य समाप्त करके वे गुरुके समीप बैठकर द्राविड़ प्रबन्धमालाका अध्ययन करते थे। उन्होने छ महीनेके भीतर ही सरोयोगि-रचित एक सौ, भूतयोगि-रचित एक सौ, महायोगि-रचित एक सौ, विष्णुचित्त-रचित चार सौ छिहत्तर, गोदाम्बा-रचित एक सौ तैतालिस, कुलशेखर-रचित एक सौ पैंतालिस, भक्तिसार-रचित दो सौ सोलह, भक्ताघ्रिरेणु-रचित पचपन, श्रीपाणियोगि-रचित दस, मधुरकवि-रचित ग्यारह, परकाल-रचित तेरह सौ साठ, श्रीशठकोप-रचित बारह सौ छानवे—सब मिलाकर प्राय चार हजार सुमधुर भक्ति-रसयुक्त सन्तापनाशक परम पवित्र गाथायें श्रीमहापूर्णसे पढ़ीं।

द्राविड प्रबन्धको आज श्रीरामानुजने समाप्त किया है, अत व गुरुको दक्षिणा देनेके अर्थ बाज़ारसे फल, ताम्बूल, पुष्प, नवीन वस्त्र आदि खरीदकर ले आये हैं। आज वे गुरु-दम्पतिकी षोड़शोपचार पूजा करेंगे। ऐसा निश्चयकर श्रीरामानुज घर लौटे है। परन्तु गुरुगृहमे प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। उन्होंने इधर-उधर बहुत ढूँढा, परन्तु कुछ पता नही लगा। तदनन्तर एक पड़ोसीसे पूछनेपर उन्हे मालूम हुआ कि श्रीमहापूर्ण स्त्रीके साथ श्रीरगम् चले गये। श्रीमहापूर्णके सहसा चले जानेका कारण पूछनेके लिए वे अपनी स्त्रीके पास पहुँचे। उन्होंने कहा—"आज प्रात· कुएँसे जल लानेके समय आपके गुरुकी स्त्रीसे मेरा झगड़ा हो गया था। मैंने तो कुछ कहा भी नहीं, परन्तु महात्माजीको इतना क्रोध आया कि उन्होंने स्त्रीको साथ लेकर देश ही छोड़ दिया। सुनती हूँ कि साधुओंको क्रोध नहीं आता। ये तो एक नये प्रकारके साधु मालूम पड़ते हैं। तुम्हारे साधुके चरणोमें बार-बार नमस्कार!" यह सुनते ही श्रीरामानुजको बड़ा क्रोध आया। उन्होने कहा—"पापिन, तेरा मुख देखनेमे भी पाप होता है।" यह कहकर फल, पुष्प आदि जो वे ले आये थे, वह सब सामग्री लेकर श्रीवरदराजकी पूजा करेनेके लिए श्रीवरदराजके मन्दिरकी ओर चले।

श्रीरामानुजके जानेके थोड़ी देर बाद एक दुर्बल भूखा ब्राह्मण वहाँ आया और उसने गृहिणीसे खानेके लिए कुछ अन्न माँगा। तजमाम्बा पतिकी बातोंसे अप्रसन्न थी ही, उसपर रसोईघरकी गरमीसे उस समय उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। भिक्षुकके शब्द उसके कानोमे वज्रके समान मालूम पड़े। उसने क्रोधसे कहा—"जा, जा, दूसरी जगह जा, यहाँ कौन तुझे अन्न देनेके लिये बैठा है।" ब्राह्मण दु खित होकर धीरे-धीरे अपने भाग्यको धिक्कारता

हुआ श्रीवरदराजके मन्दिरकी ओर चला गया। मार्गमे वहाँसे लौटते हुए श्रीरामानुजसे उसकी भेंट हुई। ब्राह्मणको जीर्ण-शीर्ण देखकर श्रीरामानुजने उससे पूछा—"ब्राह्मण! मालूम पड़ता है, आज आपको भोजन नहीं मिला है।" ब्राह्मणने कहा—"मैं आप ही के घर अतिथि होकर गया था, परन्तु आपकी स्त्रीने अन्न देनेकी अनिच्छा प्रकाश की, अत लौटा जा रहा हूँ।" श्रीरामानुजने कहा—"नहीं, आपको लौटना नहीं पडेगा। कृपाकर आप हमारे साथ बाजार चले। आपको मैं पत्र, फल, ताम्बूल और एक नया वस्त्र दूँगा। आप वह हमारी स्त्रीको दीजियेगा और कहियेगा कि मैं तुम्हारे पिताके यहाँसे आया हूँ। ऐसा कहनेसे वह आपका विशेष आदर करेगी और खिलावेगी।" यह कहकर वे बाजार गये और वहाँ सब वस्तुएँ खरीदकर उन्होंने उस ब्राह्मणको दीं तथा अपने ससुरके नामके हस्ताक्षर करके नीचे लिखे आशयका एक पत्र भी लिख दिया —

"बेटा मेरी दूसरी कन्याका ब्याह शीघ्र ही होनेवाला है। इस कारण तुम तजमाम्बाको इसी आदमीके साथ भेज देना। यदि विशेष कोई कारण न हो, तो तुमको भी यहाँ आना चाहिये। तुम्हारे आनेसे मैं अतिशय प्रसन्न होऊँगा। तजमाम्बाके न आनेसे मुझे बड़ा कष्ट उठाना पडेगा, क्योंकि निमन्त्रित मनुष्योंके भोजन आदिका प्रबन्ध अकेली तुम्हारी सास नहीं कर सकेगी, इति।"

पत्र उन्होंने ब्राह्मणको देकर उसे अपनी स्त्रीके निकट भेजा। ब्राह्मणने जाकर सब वस्तुएँ और पत्र उसे देकर कहा—"आपके पिताने हमे भेजा है।" यह सुनते ही तजमाम्बा बहुत आनन्दित हुई। उसने ब्राह्मणके स्नानके लिये जल लाकर रख दिया। इसी समय श्रीरामानुज लौट आये। तजमाम्बाने बडे विनयसे श्रीरामानुजके हाथमे पत्र देकर कहा—"हमारे पिताने तुमको यह पत्र लिखा

है।” श्रीरामानुजने पढकर उसे सुनाया और कहा—“मुझे एक बड़ा आवश्यक काम है, वहाँ जानेसे बडी हानि होगी, अत इस समय भोजन अदिसे निवृत्त होकर तुम्हीं चली जाओ। उस कामके हो जानेपर मैं भी वहाँ आनेका प्रयत्न करूँगा। अपने पिता और मातासे मेरा प्रणाम कह देना।” तजमाम्बाने यह स्वीकार कर लिया।

भोजनोपरान्त पतिके चरणोंको प्रणाम करके श्रीरामानुजकी स्त्री मैकेको चली, और श्रीरामानुज भी घर छोडकर मन्दिरकी ओर चले। मार्गमे जाते-जाते आप-ही-आप श्रीरामानुज कहने लगे, ‘पापानामकरा त्रिय’। बड़े कष्टोसे मैंने इस पिशाचिनीसे छुटकारा पाया है। हे नारायण, आप अपने चरणोमे दासको स्थान दें।

श्रीवरदराजके सन्मुख आकर उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—“नाथ, आजसे मैं सब प्रकारसे तुम्हारा हूँ, मुझे ग्रहण करो।” यह कहकर काषाय-वस्त्र ग्रहणकर श्रीवरदराजके चरण-कमलोंसे स्पर्श कराकर मन्दिरके समीपस्थ अनन्त सरोवरके तीरपर वे गये। उसी समय श्रीकाञ्चीपूर्णने उन्हें ‘यतिराज’ कहकर सम्बोधित किया। इस प्रकार सब एषणाओंको जलाकर काय, मन और वचनको अपने वशमें रखनेके अभिप्रायसे उन्होंने त्रिदण्ड ग्रहण किया। वे काषाय-वस्त्रधारी यतिराज उस समय नवोदित सूर्यके समान दीप्तिमान हुए

—* *.*—

एकादश अध्याय

यादवप्रकाशका शिष्य होना

असत्य भाषण करके श्रीरामानुजने स्त्रीसे छुटकारा पाकर सन्यास ग्रहण किया है। इससे बहुत लोग समझेंगे कि उनका यह काम धर्म-सगत नहीं हुआ, परन्तु ऐसा नहीं है।

आपदर्थे धन रक्षेत् दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मान सततरक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥

इस पुरातन नीति-वाक्यके अनुसार उन्होने स्त्रीका त्याग किया था। पर कहा जा सकता है कि झूठी बात कह और स्त्रीको धोखा देकर उनका सन्यास ग्रहण करना उचित नहीं हुआ। मिथ्या बोलना सर्वदा पाप है, यह नीति-विशारदोंका मत नही है। सूर्य स्थिर है और पृथिवी घूमती है, यह मूर्खोंको समझानेके लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है। अतएव नीति-विशारद कहते हैं :—

मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्वार्थेन च पण्डितम् ।

——मूर्खोंको उन्हींके अभिप्रायानुसार और पण्डितोंको यथार्थ वाक्य-प्रयोग द्वारा अपने वशमे करना चाहिये। श्रीचैतन्यदेवने माता शची देवीसे ही अपने गृहत्यागकी बात कही थी, विष्णुप्रियासे नहीं। श्रीमान् शाक्यसिह चोरोके समान घरसे निकलकर भाग गये थे। प्रणयिनी स्त्रीको उन्होंने अपने मनकी बातें नहीं

जनाई थीं। यद्यपि विष्णुप्रिया और गोपा दोनों ही पति-भक्तिपरायणा थीं, पति सुख ही से वे अपनेको सुखी समझती थीं, तथापि लोक-कल्याणके लिये अवतीर्ण दोनों महापुरुषोंको वे अपनाना चाहती थीं। अत. उनमे स्वार्थ और मोहकी मात्रा अधिक थी। इसी कारण उनको यथार्थ बतला देना नीतिके विरुद्ध है। तजमाम्बा उस प्रकारकी स्त्री नहीं थी। उसने तीन बार पतिकी आज्ञाका उल्लघन किया था। अत यदि श्रीरामानुज उससे अपने मनका भाव कहते, तो इससे एक विलक्षण काण्ड उपस्थित होता। जिसके जोवनका प्रधान उद्देश्य आत्म-सुख है और पति-सुख गौण है, ऐसी देहाभिमानिनी, स्वार्थपरायणा, सौन्दर्यमुग्धा स्त्रीकी सर्वदा यही इच्छा होती है कि पति हरि-सेवाको छोड़कर सर्वदा हमारी ही सेवामें लगे रहे। ऐसी स्त्रीसे हरि-सेवाके लिये परामर्श करना ही उन्मत्तता है। श्रीरामानुजने तजमाम्बाके हृदयमें हरि-भक्तिका बीज रोपनेके लिये विशेष प्रयत्न किया था, परन्तु स्वार्थ-सिकतामय ऊसर क्षेत्रमे अकुर उत्पन्न होनेकी कोई आशा ही नहीं देखो गई। अतएव वे उक्त कालकी प्रतीक्षा करने लगे। अश्रुधारा ही स्वार्थ-सिकताको धौत करनेका एकमात्र उपाय है, यह वे भलीभाँति जानते थे। इसी कारण उन्होंने घर छोडा। इससे जिस प्रकार श्रीरामानुजका चित्त सर्वदा भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न होकर अपनेको कृतार्थ समझेगा, उसी प्रकार तजमाम्बाके नयनोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होकर उनके हृदयकी ऊसरताको नष्ट करेगी। अत तजमाम्बाको धोखा देकर श्रीरामानुजका सन्यास ग्रहण करना अन्याय नहीं है।

श्रीरामानुजने किस सम्प्रदायके अनुवर्ती होकर चतुर्थ आश्रम ग्रहण किया? इस प्रश्नके उत्तरमे यही कहा जायगा कि उन्होंने अद्वैत सम्प्रदायका अनुवर्तन नहीं किया, क्योंकि बाल्यावस्थासे ही उन्होंने अपने गुरु यादवप्रकाशके सथा

उसी सिद्धान्तके विषयमे विवाद किया है। उन्होंने श्रीशकर-सम्प्रदायी उस समयके किसी सन्यासीको गुरु नहीं बनाया था। साक्षात् सनातन श्रीवरदराज ही उनके गुरु हुए थे और भगवान्में एकान्तिकी और अद्वैतकी भक्ति ही उनके सन्यासमें हेतु है। वे सर्वदा अनन्य चित्त होकर श्रीहरिके ध्यानमे निमग्न होना ही अधिक उत्तम समझते थे। इस कारण सासारिक विषयोंमें मन देना उनके लिये कठिन हो गया। अतएव ऐसे महानुभावोको ससार-त्यागना ही स्वभाव-सिद्ध है। भक्ति-रसमें वे समस्त रसोंको भूल गये थे। इस कारण उन्हें भक्ति-मार्गका सन्यासी कहना अधिक उपयुक्त है।

सन्यास-ग्रहणके अनन्तर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी विस्मित हुए। स्त्री युवती और परम सुन्दरी है। स्वय भी युवक और सुन्दर हैं। इस अवस्थामें ससार-सुख छोड़ना भोगियोंकी दृष्टिमें नितान्त असम्भव है। इसी कारण अनेक मनुष्य उन्हें उन्मत्त समझने लगे। कोई-कोई उनका अवतारोंके साथ तुलना करते थे। वहाँके मठके रहनेवालोंने उन्हे अपना अध्यक्ष बनाया। उनका गुणाधिक्य और पण्डित्य किसीसे छिपा नहीं था। अतएव दो-एक शिष्य भी उनके चरणाश्रित हो गये। दाशरथि नामक उनका एक भानजा सबसे पहले उनसे दीक्षित हुआ। तदनन्तर हारीत-गोत्रीय कूरनाथ वा कूरेश उनके दूसरे शिष्य हुए। इनकी असाधारण स्मृतिशक्ति थी। ये जिस बातको एक बार सुन लेते, उसे कभी भूलते नहीं थे। इन्हीं दोनो शिष्योंके साथ मठमें बैठकर और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके श्रीरामानुज जिस समय आगन्तुकोंके साथ वार्तालाप करते थे, उस समय उनकी एक अपूर्व शोभा होती थी।

एक समय यादवप्रकाशकी वृद्धा माता श्रीवरदराजका दर्शन करने आई। मठमें उन्होंने श्रीरामानुजका भी दर्शन किया, और उनके रूप-गुणपर मोहित

होकर वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि यदि मेरा पुत्र इस महानुभावका शिष्य हो जाता, तो अवश्य ही उसे परम शान्ति प्राप्त होती। यादवप्रकाशने श्रीरामानुजके प्रति जबसे पशुओंके समान आचरण किया था, तबसे उसके हृदयमे शान्ति नहीं थी, यह बात उसकी माता जानती थी। नवीन सन्यासीकी देवतुल्य मूर्त्ति देखकर वृद्धाने उन्हे श्रीवरदराजकी दूसरी मूर्त्ति समझा और निश्चित किया कि यदि मैं यादवप्रकाशको इस महात्माके चरणोमे ला सकी, तो अवश्य ही यादवप्रकाशका बड़ा मगल होगा। घर लौटकर वृद्धाने अपने पुत्रसे अपने हृदयका भाव प्रकाशित किया और उसी प्रकार कार्य करनेके लिये उससे विशेष अनुरोध किया। शिष्यका शिष्य होना पड़ेगा, यह बात सोचकर यादवप्रकाशने माताके आज्ञापालनमें अनिच्छा प्रकाशित की, परन्तु उसके चित्तने इस अपसिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया। उत्कण्ठित होकर घूमते-घूमते उसने मार्गमें सहसा श्रीकाञ्चीपूर्णको देखा और बड़ी भक्तिसे उनसे पूछा—"महात्मन्! मेरे हृदयमें एक प्रकारकी अशान्ति उत्पन्न हुई है, उसके शान्त होनेका कृपया उपाय बता दीजिये, क्योकि आप श्रीवरदराजके मुख-स्वरूप हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं।" श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"आप आज घर जायँ, कल प्रभुसे सब बातें जानकर मैं आपसे कहूँगा।"

दूसरे दिन श्रीकाञ्चीपूर्णके मुखसे श्रीरामानुजका असाधारण महत्व और उनके शिष्य होनेसे अपने मगलका होना सुन यादवप्रकाशने मठमे जाकर श्रीरामानुजाचार्यका दर्शन करने और उनके साथ शास्त्रालाप करनेका सकल्प किया। उसने सोचा कि मूर्खोंके समान योंही किसी बातपर विश्वास करना अनुचित है। पिछली रातको स्वप्नमे श्रीरामानुजाचार्यका शिष्य होनेके लिये उससे किसी पुरुषने कहा। आज श्रीकाञ्चीपूर्णने भी वे ही बातें कहीं। परन्तु

वह स्वप्न अथवा किसीकी बातोंके भुलावेमें आनेवाला नहीं है। इसी कारण वह भिक्षोपरान्त मठमें गया। श्रीरामानुजाचार्यकी अमानुषी ज्योतिको देखकर सचमुच ही वह मोहित हो गया, परन्तु जिसे वह शिष्य समझ रहा है, उसे सहसा गुरुके आसनपर बैठा देना क्या उचित है?

यादवप्रकाशको आते देखकर बड़े आदरसे श्रीरामानुजाचार्यने उसे आसन दिलवाया। इससे यादवप्रकाश विशेष प्रसन्न हुआ। इधर-उधरकी बातोंके हो जानेपर यादवप्रकाशने कहा—"बेटा! तुम्हारे पाण्डित्य और विनयसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। देखता हूँ, तुमने ऊर्ध्वपुण्ड्र और दोनों बाहुओंमे शखचक्र धारण किया है और तुम्हे सगुणोपासना ही अच्छी मालूम पड़ती है। अच्छा तो क्या तुम इसके शास्त्रीय प्रमाण दे सकते हो?" श्रीरामानुजाचार्यने कहा—"ये कूरनाथ बड़े बुद्धिमान हैं। इन्हें समग्र शास्त्र कण्ठस्थ हैं। आप इनसे पूछें, ये आपको अनायास ही अनेक प्रमाण दे सकेंगे।" यादवने कूरनाथकी ओर देखा। कूरनाथने कहा—"महाशय, सामवेदका ही प्रमाण सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि भगवान् गीतामें कहते हैं—'वेदाना सामवेदोस्मि'। अतएव पहले आपको सामवेद ही का प्रमाण देते हैं।—

'प्रतप्ते विष्णोरब्जचक्रे पवित्रे जन्माम्भोधिं तर्त्तवे चर्षणीन्द्रा.,
मूलेबाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणाः लिङ्गान्यङ्गे तावकान्यर्पयन्ति॥' (साम्नि)

—मानवश्रेष्ठ भवसागरसे पार होनेके लिये बाहुमूलमे विष्णुके पवित्र शख और चक्रका चिह्न धारण करते हैं। कोई-कोई इन चिह्नोंको अङ्गोंमें धारण करते हैं।

'पवित्रमित्यग्नि। आग्निर्वै सहस्रार। सहस्रारो नेमि। नेमिना तप्त तनुर्ब्राह्मण सायुज्य सलोकतामाप्नोति॥' (सामवेदमें नारायणीय शाखा)

—अग्निदग्ध, सुतरा लोहितवर्ण उक्त सुदर्शनचक्र द्वारा जिनका शरीर उत्तप्त हुआ,

वे ब्रह्म सायुज्य प्राप्त करके ब्रह्मलोकमें वास करनेके अधिकारी होते हैं।

'पवित्रतेविततं' इत्यादि श्रुतिमें जो पवित्र शब्द है, वह अग्नितप्त अतएव अग्नितुल्य सुदर्शनवाचक है। वही अग्नितप्त सुदर्शन सहस्रार कहा जाता है। सहस्रार जो है, वह नेमि शब्द वाच्य है।

'एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिन्हैः रङ्किता लोके सुभगा भवाम।
तद्विष्णो परमं पदं येऽधि गच्छन्ति लाञ्छिता अथर्वण॥'

—जो लोग लाञ्छित अर्थात् चक्र आदि चिह्नोंसे चिह्नित हैं, वे वैष्णव परमपदको जाते हैं। अतएव हम भी त्रिविक्रम भगवान्‌के इन चिह्नोंसे अंकित होकर वैकुण्ठलोकमें शोभनैश्वर्यशाली होवेंगे।

'उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रादयस्तथा।
ब्राह्मणस्य विशेषेण वैष्णवस्य विशेषतः॥'

—ब्राह्मणोंको, विशेषकर वैष्णवोंको, उपवीत आदिके समान शंखचक्रादि चिह्न धारण करने चाहिये।

'हरेः पदाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति समुक्तिभाक् भवति।' (महोपनिषत्)

—जो मनुष्य आत्म-कल्याणके लिये भगवान्‌के चरणाकार मध्यमें अवकाशयुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं, वे परमात्माके प्रिय भक्तिमान् और मुक्तिमान् होते हैं।

हे पण्डितप्रवर! अब मैं ब्रह्मके सगुण होनेके विषयमें प्रमाण-रूप श्रुति कहता हूँ—'यः सर्वज्ञः सर्ववित्परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च' (श्वेताश्वतर) वे उत्तम अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं, उनका ज्ञान, बल और कार्य स्वभावसिद्ध धर्म है।

'अपहतपाप्मा विज्वरेविमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकल्याण गुणः सत्यसङ्कल्पः।'

—वे पापलेश-शून्य हैं। जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा उनको नहीं है। वे कल्याण गुणवान् हैं और उनके संकल्प कभी मिथ्या नहीं होते।

'नारायण परब्रह्म तत्व नारायण परम्। नारायण एवेद सर्वम् निष्कलङ्को निरजनो। निर्विकल्पो निराख्यात शुद्धो दव एको नारायण। एको ह वै नारायण आसीत्। न ब्रह्म नेशाने। नइमेद्यावा पृथिवी, न नक्षत्राणि, नापो नाग्निर्न यमो न सूर्य इति।'

—नारायण ही परमब्रह्म और परमतत्व हैं, यह समस्त नारायणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वे ही निष्कलक, विकारहीन, नामहीन, शुद्ध और सर्वप्रकाशक हैं। पहले एकमात्र नारायण ही थे। उस समय ब्रह्मा, शिव, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र, जल, अग्नि, चन्द्र और सूर्य कोई भी नहीं थे।"

इसी प्रकार कूरनाथ वेद, पुराण, इतिहास आदिसे अनेक प्रमाण देने लगे। उन सबका यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है। उनके मुखसे गगाकी धाराके समान अविरत प्रमाणोंको निकलते देख यादवप्रकाश चकित हो गये। इसके पहले ही उनकी सुन्दरता और सुजनतापर यादवप्रकाश विशेष आकृष्ट हुए थे। इसके अतिरिक्त अपना पूर्व अत्याचार, माताकी आज्ञा, श्रीकाञ्चीपूर्ण-कथित श्रीवरदराजकी इच्छा आदिको स्मरण करके वे अधिक काल तक नहीं ठहर सके। उन्होंने दौड़कर श्रीरामानुजाचार्यके चरण पकड़ लिये। निषेध करते रहनेपर भी वे चरण पकड़े हुए रोने लगे और गिड़गिड़ाते हुए बोले—"हे रामानुज! तुम सत्य ही राघवके अनुज हो। मैं अज्ञानान्ध होकर तुम्हें पहचान नहीं सका। मेरा अपराध क्षमा करो। तुम कर्णधार होकर इस भयकर भव-समुद्रसे मेरा उद्धार करो। मैं तुम्हारे शरणागत हूँ।" गुरुको ऐसी अवस्थामें देखकर श्रीरामानुजाचार्य स्थिर न रह सके। उन्होंने उसी समय उनको भूमिसे

उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया और उनके हृदयकी समस्त अशान्तियोंको नष्ट कर दिया।

माताकी आज्ञासे उसी दिन श्रीरामानुजसे प्रायश्चित्त* पूर्वक सन्यास ग्रहणकर यादवने अपनेको कृतार्थ समझा। ऊर्ध्वपुण्ड्र, धारण, अकन, दास्य, नाम आदि पच सस्कारोंसे सस्कृत होकर उन्होंने गुरुदत्त गोविन्ददास नाम ग्रहण किया। भक्तिके प्रति उनकी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। यादवप्रकाशके रूप, गुण, स्वभाव आदि सभीमें परिवर्त्तन हो गया। श्रीरामानुजाचार्यकी इस प्रकारकी अलौकिक शक्ति देखकर लोग उन्हें ईश्वरावतार समझने लगे। उनका यश चारों दिशाओंमें फैल गया। श्रीयादवप्रकाशका अनुताप और उनकी दीनता देखकर श्रीरामानुजाचार्यने कहा—"महानुभाव, आपका मन निर्मल हो गया है। पहले आपने श्रीवैष्णवोंकी बड़ी निन्दा की है, उस पापको धोनेके लिये 'सन्यासियोका कर्तव्य' विषयपर आप एक ग्रन्थ बनावें। ऐसा करनेसे आपको पूर्ण शान्ति मिलेगी।"

यतिराजके कथनानुसार अल्प समयमें ही यादवने 'यतिधर्म-समुच्चय' नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाकर श्रीगुरुके चरणोंमें समर्पित किया। उस समय उनकी अवस्था ८० वर्षकी हो चुकी थी। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक वे जीवित रहे। तदनन्तर उन्होंने मानवी लीला सवरण की। अब श्रीरामानुजाचार्यका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

---

* प्रायश्चित्तके प्रमाण ये हैं :—

यस्त्वेक दण्ड मालव्य धर्मं ब्राह्म परित्यजेत्।
विकर्मस्थो भवेद्विप्र सयाति नरक ध्रुवम्॥

—**—

द्वादश अध्याय

श्रीरामानुजके भाई गोविन्दका श्रीवैष्णव होना

श्रीयामुनाचार्यके लीला सवरण करनेपर श्रीरगमठका यथार्थमें कोई नेता नहीं था। यद्यपि श्रीमहापूर्ण और श्रीवररग उस अलौकिक महापुरुषके उपयुक्त शिष्य थे, तथापि उनका और अन्य शिष्योंका भी मन सर्वदा उस सर्वशास्त्रमर्मज्ञ ईश्वरानुरागमय सौम्यदर्शन महानुभावके अभावका अनुभव करता था। फिर भी उनके मनमें उस अभावकी पूर्त्तिके लिये एक प्रकारकी बलवती आशा थी। उन लोगोंने गुरुमुखसे श्रीरामानुजकी बार-बार प्रशंसा सुनी थी। श्रीरामानुज अवतारी पुरुष हैं, यह बात श्रीयामुनाचार्य अपने शिष्योंसे कहा करते थे। उन्हींको ले आनेके लिये श्रीमहापूर्ण भेजे गये थे। श्रीरामानुजके घरमें बहुत दिनों तक रहकर श्रीमहापूर्णने उन्हें प्रबन्धमालामें विशेष व्युत्पन्न किया था। इस समय वे स्त्रीके साथ वहाँसे लौट आये हैं। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे श्रीरामानुजको साथ ही लेकर जाते, परन्तु अकस्मात् उस स्थानको छोड़ देनेके कारण वे अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सके। इसी बीच जब उन्होंने लोगोंसे सुना कि उनके देवतुल्य शिष्यने सन्यास ग्रहण किया है, तब वे बड़े आनन्दित हुए और श्रीरंगनाथके समीप जाकर प्रार्थना की—"हे शरणागतपालक, परिपूर्ण

परब्रह्म, आप सभीके अभावोंको पूर्ण करते हैं, श्रीरामानुजको अपने चरणोंमें बुलाकर हम लोगोंके एक बड़े भारी अभावको पूरा करो।" प्रेम-गद्गदचित्तसे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर श्रीभगवान्ने इस प्रकार आज्ञा दी—"वत्स महापूर्ण, तुम देवगानविशारद वररगको काञ्चीपुरपति श्रीवरदराजके समीप भेजो। वे अत्यन्त सगीतप्रिय हैं। वररगके गानसे सन्तुष्ट होकर जिस समय भगवान् उसे वर देने लगें, उस समय वह उनसे श्रीरामानुजको ही वरमें माँगे ; क्योंकि बिना श्रीवरदराजकी आज्ञाके यतिराज उनका आश्रय नहीं त्याग सकते।"

भगवान्से इस प्रकार आज्ञा पाकर श्रीमहापूर्णने शीघ्र ही वररगको काञ्ची भेजा। वहाँ जाकर वररगने सगीत द्वारा श्रीवरदराजको ऐसा सन्तुष्ट किया कि उनके श्रीरामानुजको भिक्षा-स्वरूप माँगनेपर त्रिलोकपतिने अपने भक्तके वियोग-जन्य दु सह दु खकी ओर दृष्टि न कर उनकी प्रार्थना पूरी की। जिस समय वररग श्रीरामानुजको साथ लेकर श्रीरगनाथके चरणोंमें उपस्थित हुए, उस समय मठवासी विशुद्ध स्वभाव वैष्णव तथा समस्त नगरवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही। श्रीरगनाथने उन्हें उभयविभूतिपति बनाया अर्थात् त्रिपाद्विभूति और लीलाविभूतिका स्वामित्व उन्हें दिया। इन विभूतियोंको पाकर यतिराज श्रीरामानुज एक अलौकिक शोभासम्पन्न हुए। देश-देशान्तरोंसे अनेक वैष्णवोंका दल आ-आकर उनके चरण-स्पर्शसे अपनेको कृतार्थ मानने लगा। उनसे विष्णु-माहात्म्य सुनकर लोगोंने उनको आदर्श वैष्णव समझा।

इसी समय उनका मन अपने परम आत्मीय गोविन्दके लिये चञ्चल हो उठा। जिस गोविन्दने उनके प्राणनाशक यादवके षडयन्त्रका पता बताया था, जिसकी सरलता, भगवद्भक्ति और पाण्डित्यसे साथ पढ़नेवालों और गुरुको भी चकित होना पड़ता था, उसी प्राणसम बन्धुको अपने दिव्य सुखका भागी

बनानेके लिये उनका हृदय व्याकुल हुआ था। किस प्रकार वह कालहस्तिसे यहाँ आवेगा, इसीकी वे चिन्ता करने लगे। थोड़ी देरके पश्चात् उन्हे स्मरण हुआ कि परम वैष्णव श्रीशैलपूर्ण कालहस्तिके समीप श्रीशैलपर भगवत्सेवाके लिये रहते हैं। उनके द्वारा गोविन्दको वैष्णव मतमे ले आनेका प्रयत्न सफल होगा। इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने श्रीशैलपूर्णको एक पत्र भेजा। वे परम भागवत् पत्रका मर्म जानकर उसी समयसे शिष्योंको साथ लेकर कालहस्तिके समीपस्थ एक सरोवरके तीरपर वास करने लगे।

गोविन्द प्रतिदिन उस सरोवरके तीर पुष्प लेने और स्नान करनेके लिये आते थे। दूसरे दिन यथारीत्यानुसार गोविन्दने आकर देखा कि एक दिव्य-कान्ति श्वेतश्मश्रु वैष्णव कतिपय शिष्यों-सहित वहाँ शास्त्रालाप कर रहा है। उसे सुननेकी इच्छासे पाटली-वृक्षके ऊपर पुष्प तोड़नेके लिये वे चढे और जो सुना, उससे उनकी वैष्णवोंपर भक्ति उत्पन्न हुई। वे वृक्षसे उतरकर स्नान करने जा रहे थे। ऐसे समय श्रीशैलपूर्णने उन्हें सम्बोधन करके कहा—"महात्मन्! किसकी सेवाके लिये आप फूल ले जाते हैं, क्या यह हम भी जान सकते हैं?" शिव-पूजनके लिये ले जा रहा हूँ, यह सुनकर और ससारको सब दु खोंका मूल जानकर उन्होंने उनके रास्तेमें एक छोटेसे तालपत्रके टुकड़ेपर स्तोत्ररत्नके 'स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वम्'—इस श्लोकको लिखकर रखवा दिया। गोविन्दने उस तालपत्रके टुकड़ेको हाथमे उठाकर श्लोकको पढा, और कुछ देर खड़े रहकर उसके अर्थपर विचार करता रहा। अन्तमे उस टुकड़ेको फेंककर तालाबकी तरफ वह चला गया। जब जल लेकर वह तालाबसे लौटा, तब ढूँढ़कर उस तालपत्रको फिर उठा लिया और श्लोकको ध्यानसे विचारता तथा उस वैष्णवमण्डलीकी ओर स्मितवदन हो देखता हुआ चला गया। श्रीशैलपूर्ण

स्वामीजी अपने प्रयत्नका कुछ फल होते हुए देख प्रसन्नचित्त तिरुपति लौट गये। कुछ दिन बाद वे फिर कालहस्ति गये। अबकी बार गोविन्दसे खूब सल्लाप हुआ। जब तीसरी बार श्रीशैलपूर्ण कालहस्ति पधारे, तब तालाबके तटपर एक वृक्षके नीचे बैठ वे सहस्रगीतिकी व्याख्या शिष्योंको सुनाने लगे। गोविन्द पाटली-वृक्षके ऊपर चढकर पुष्प तोड़ रहा था। सहस्रगीतिकी व्याख्या होने लगी, तो गोविन्द पुष्प तोड़ना छोड़ दत्तचित्त हो उसीको सुनाने लगा। उसकी एक गाथामें 'अस्मत्स्वामिनोन्यस्य कस्य पुष्प चन्दन च योग्य भवेत्'—यह वाक्य आया। उसकी व्याख्या सुनते ही गोविन्द पेड़से नीचे उतरा और पुष्पकी टोकनी दूर फेंककर, रुद्राक्षकी माला तोड़कर फेंक दी और श्रीशैलपूर्णके समीप दौड़ा जाकर 'न योग्य न योग्यम्' कहते हुए उनके चरणोंमें वह पड़ गया। वह विषण्णचित्त होकर प्रलाप करने लगा। श्रीशैलपूर्णने बड़ी प्रीतिके साथ उसको उठाकर अपनी छातीसे लगाया और सान्त्वना दी। वे उसको साथ लेकर तिरुपतिको लौट गये, और वहाँ उन्होंने गोविन्दको वैष्णव दीक्षासे दीक्षित किया।

त्रयोदश अध्याय

श्रीगोष्ठीपूर्ण

श्रीरंग क्षेत्रमे आनेपर श्रीरामानुजाचार्य श्रीमहापूर्णको अपना गुरु पाकर श्रीयामुनाचार्यके अभावसे उत्पन्न शोकको भूल गये। आदर्श शिष्योंके समान व्यवहार करके उन्होंने शिष्य-कर्तव्यकी शिक्षा दी थी।

शरीरवसु विज्ञान वास कर्मगुणानसून्।
गुर्वर्थं धारयेद्यस्तु सशिष्यो नेतर स्मृत ॥

—जो शरीर, वन, ज्ञान, वसन, कर्म, गुण और प्राण गुरु ही के लिये धारण करते हैं, वे ही प्रकृति शिष्य हैं। श्रीरामानुज इसी प्रकारके शिष्य थे। श्रीमहापूर्णके निकट उन्होंने गीतार्थ-सग्रह, सिद्धित्रय, व्याससूत्र पचरात्रागम आदिका अध्ययन किया। उनकी अतुलनीय प्रतिभापर मोहित होकर श्रीमहापूर्णने अपने पुत्र पुण्डरीकको उनका शिष्य बनवा दिया। श्रीमहापूर्णने श्रीरामानुजसे एक दिन कहा—"वत्स ! यहाँसे कुछ दूरपर तिरुक्कोटियूर अथवा गोष्ठीपुर नामक एक वार्द्धिष्णु ग्राम है। वहाँ गोष्ठीपूर्ण नामक एक परम धार्मिक विद्वान् रहते हैं। उनके समान वैष्णव इस प्रदेशमे दूसरा नहीं है, ऐसा कहना अत्युक्त न होगा। उनके पास श्रीयामुनाचार्योपदिष्ट रहस्यार्थ-विशेष है। उनसे उन अर्थ-विशेषोको सुनो।" यह सुनकर श्रीरामानुजाचार्य उसी समय गोष्ठीपुर गये और श्रीगोष्ठीपूर्णके समीप जाकर उन्हे प्रणाम करके अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। उत्तरमे उन्होंने यही कहा—"और किसी दिन आना, देखा जायगा।" इससे दु खित होकर श्रीरामानुजाचार्य अपने स्थानको लौट आये।

इसके एक-दो दिन पश्चात् श्रीरंगनाथका महान् उत्सव हुआ। उसमें श्रीगोष्ठीपूर्ण भी गये। कहा गया है कि किसी श्रीरंगनाथके सेवकने भगवदाविष्ट होकर उनसे कहा—"तुम श्रीरामानुजाचार्यको रहस्यार्थका उपदेश दो ; क्योंकि उनके समान उत्तम आधार तुम्हें दूसरा नहीं मिलेगा।" श्रीगोष्ठीपूर्णने कहा—"प्रभो! आप ही ने नियम किया है :—

इदन्ते नातपस्यकाय, नाभक्ताय कदाचन।
नचा शुश्रूषये वाच्य न च मा योऽभ्यसूयति ॥

—पहले बिना कुछ समय तपस्या किये चित्त शुद्ध नहीं होता। अशुद्ध चित्तमें रहस्यार्थ धारण करनेकी शक्ति किस प्रकार हो सकती है?" श्रीगोष्ठीपूर्णके ऐस कहनेपर उत्तर हुआ कि पूर्ण! तुम्हें इनकी पवित्रताके सम्बन्धमें कुछ भी विदित नहीं है। ये जगत्को पवित्र करनेवाले हैं, तुम्हें यह बात पीछे मालूम होगी।

इसके अनन्तर श्रीरामानुजाचार्य पुनः श्रीगोष्ठीपूर्णके समीप गये, परन्तु अबकी बार भी वे सफल-मनोरथ न हो सके। इस प्रकार अठारह बार भग्न-मनोरथ होनेपर वे बड़े ही व्याकुल हुए। उन्होंने सोचा—'अवश्य ही हमारे हृदयमें किसी प्रकारकी मलिनता वर्तमान है, इसी कारण देशिकेन्द्र कृपा नहीं करते।' इस प्रकार सोचते-सोचते वे घबड़ाकर रोने लगे। कईएक मनुष्योंके कहनेपर श्रीगोष्ठीपूर्णके हृदयमें भी दयाका सचार हुआ। उन्होंने अपने एक शिष्य द्वारा श्रीरामानुजाचार्यको बुलवाकर रहस्य मन्त्रोपदेश करनेके पूर्व उनसे प्रतिज्ञा करा ली कि और किसीसे मैं न कहूँगा। और कहा—"एक विष्णुके अतिरिक्त दूसरा इस माहात्म्यको नहीं जानता। मैं तुम्हें इसके अत्यन्त योग्य समझता हूँ। इसी कारण मैंने तुम्हें इस मन्त्रका उपदेश दिया है। इस

कलियुगमें मैं और किसीको इसका अधिकारी नहीं समझता। जो कोई इसे सुनेगा, वह अवश्य ही शरीरान्त होनेपर मुक्ति प्राप्त करके वैकुण्ठ धाम जायगा। अत· तुम इस मन्त्रको किसीको न देना।" श्रीरामानुजाचार्य गुरु-वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उनका मनोरथ पूर्ण हुआ। मन्त्र-बलसे उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। उनके मुखमण्डलने एक अलौकिक शोभा धारण की। परम प्रसन्नता प्राप्तकर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा, और वे बार-बार गुरुके चरणोंको प्रणाम करने लगे।

श्रीगुरुजीके यहाँसे विदा होकर वे श्रीरगम्की ओर जाने लगे। सहसा न मालूम उनके हृदयमें किस भावका उदय हुआ। वे गोष्ठीपुरस्थ श्रीविष्णु-मन्दिरकी ओर चले और मार्गमें जिसको वे देखते, उसीसे कहते—"चलो, मन्दिरके पास चलो, मै तुम्हें अमूल्य रत्न दूँगा।" उनका प्रफुल्ल मुख, अलौकिक भाव, सरलतामय वचन और ब्राह्मणोचित तेजोमयी दिव्यकान्ति देखकर मन्त्रमुग्धके समान आबाल-वृद्ध-वनिता उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समस्त नगरमें यह किंवदन्ती फैल गई कि एक महापुरुष स्वर्गसे आये हैं और मन्दिरके पास वे ठहरे हैं और जो जिस वस्तुकी प्रार्थना करता है, वे उसको वही देते हैं। इस किंवदन्तीको सुनकर जो जैसे थे, वे वैसे ही मन्दिरकी ओर दौड़े। एक दण्डमें ही उस नगरके तथा नगरके आसपासके सभी लोग वहाँ उपस्थित हुए। उपस्थित जनताको देखकर श्रीरामानुजके हृदयमें असीम प्रेम-समुद्र उमड़ने लगा। उन्होने अपने प्रिय शिष्य दाशरथि और कूरनाथको भी उस आनन्दका भागी बनाया। तदनन्तर मन्दिरके ऊँचे भागपर चढ़कर उन्होंने उच्च स्वरमें कहा—"प्राणसे भी अधिक प्रियतम भाई और बहिनो! तुम लोग यदि इसी समय ससारकी समस्त व्याधियोंसे छुटकारा पाना चाहते हो, तो तुम लोगोंके

लिये हमने जिस मन्त्रका सग्रह किया है, उसे तीन बार हमारे साथ पढो।" सभी एक बार ही बोल उठे—"कहिये, हम लोगोको कृतार्थ कीजिये, हम लोग प्रस्तुत हैं।" तब श्रीयामुनाचार्यके हृद्गत भावोका एकमात्र मर्मज्ञ, उभय-विभूतिपति, सर्वसन्तापहारी, सर्वजनप्रिय, वात्सल्य-पयोनिधि, जीवदु खासहिष्णु, लक्ष्मणावतार श्रीरामानुजाचार्यने अपने आनन्दमय हृदयके गभीरतम प्रदेशसे, वज्रनिर्घोषके समान अष्टाक्षर महामन्त्र उच्चारण किया। जिस प्रकार भूखा मनुष्य बड़े आग्रहके साथ अन्न ग्रहण करता है, उसी प्रकार उस जनताने बड़े आग्रहके साथ सर्वसुख-निधान महामन्त्रको ग्रहणकर एक बार ही उसका उच्चारण किया। श्रीरामानुजके साथ पुन दो बार उस महामन्त्रका उच्चारणकर जनता स्थिर हुई। अहा! मन्त्रका कैसा प्रभाव है! उस समय यह पृथ्वी वैकुण्ठके समान प्रतीत होने लगी। आनन्दोत्फुल्ल बाल-वृद्ध-वनिताके मुखमण्डलसे ऐसा मालूम होता था, मानो इनका दु ख-दारिद्र्य सदाके लिये नष्ट हो गया। जो धन पाने और किसी सासारिक कामनासे आये थे, वे काँच चाहनेवालेको हीरेकी प्राप्तिके आनन्दके समान नित्य आनन्दको पाकर ससारकी बात ही भूल गये। दिव्यानन्द प्राप्तकर सभी देवतुल्य हो गये और पृथ्वी भी स्वर्गतुल्य हो गई। श्रीरामानुजाचार्यके चरणोंको साष्टाङ्ग प्रणामकर सब अपनेको कृतार्थ समझते और उनको धन्यवाद देते हुए वे सब क्रमश वहाँसे चले गये। तब शिष्योंके साथ श्रीरामानुजाचार्य मन्दिरसे उतरकर गुरु श्रीगोष्ठीपूर्णकी पूजा करनेकी इच्छासे उनके घरकी ओर चले। उस समय श्रीरामानुजाचार्यकी दिव्य शोभा देखते ही बनती थी।

इधर अन्य शिष्योंके मुँहसे श्रीगोष्ठीपूर्ण श्रीरामानुजाचार्यकी बाते सुनकर बडे अप्रसन्न हुए थे। अत दोनों शिष्योंके साथ श्रीरामानुजाचार्यके उनके

समीप जानेपर वे क्रोधको रोक न सके और बड़े ज़ोरसे कहने लगे—"हट नराधम! तेरे समान नरपशुको महारत्न देकर मैंने बड़ा पाप किया। अब तू अपना मुख दिखाकर क्यों हमे और पापमे लिप्त करता है। तेरे समान नर-पिशाचको नरकमे भी स्थान मिलना कठिन है।" श्रीरामानुजाचार्य इससे कुछ भी न डरे और उन्होंने अति विनयसे कहा—"महात्मन्! नरकवासके लिये प्रस्तुत होकर ही मैंने आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। आपके कहनेके अनुसार जो इस मन्त्रको सुनेगा, उसकी मुक्ति होगी—इस बातपर भरोसा रखकर ही मैंने नगरके समस्त मनुष्योंको मोक्षका अधिकारी बनाया है। देहान्त होनेपर वे सभी मोक्ष पाकर कृतकृत्य होगे। यदि केवल मैं नरकमे गिरूँ और मेरे बदले अनेक नर-नारी स्वर्ग जायँ, तो ऐसा नरक मुझे प्रार्थनीय है। आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन मैंने किया है, इस कारण मुझे नरक हो और आपके ही कथनानुसार हज़ारो दु खी नर-नारी परम गति पावें। इससे बढ़कर लाभदायी तथा कल्याणकर और क्या है?

"पतिष्ये एक एवाह नरके गुरुपातकात्।
सर्वे गच्छन्तु भवता कृपया परम पदम्॥"

जिस प्रसार काले मेघोंका भयानक गर्जन सुनकर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी त्रस्त हो जाते हैं और पुन वायुके विपरीत बहनेपर मेघोंके छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण उनका त्रास दूर होता है, उसी प्रकार श्रीगोष्ठीपूर्णके क्रोधसे रक्त-भीषण मुखको देखकर सभी डर गये थे, परन्तु श्रीरामानुजाचार्यके युक्ति-युक्त प्रेम और विनयपूर्ण वचनोंसे गुरुका मुख क्रोधशून्य और निर्मल हो जानेपर सबका त्रास दूर हुआ। अपनी सकीर्णता और श्रीरामानुजकी परमोदारता देखकर श्रीगोष्ठीपूर्णने गाढ भक्तिके साथ जब आलिगन किया, तब इस अकस्मात्

परिवर्त्तनसे सभी चित्र-लिखितके समान स्तम्भित हो गये। तदनन्तर हाथ जोड़कर श्रीगोष्ठीपूर्ण कहने लगे—"महानुभाव, आजसे आप हमारे गुरु और हम आपके शिष्य हुए। जिनका इस प्रकार विशाल हृदय है, वे विष्णुके अंश हैं, इसमें तिल-मात्र भी सन्देह नहीं है। मैं सामान्य जीव हूँ, आपके माहात्म्यको किस प्रकार समझ सकता हूँ? आप हमारा अपराध क्षमा करें।" लज्जासे सिर नीचा करके और गुरुके चरण पकड़कर श्रीरामानुजाचार्य कहने लगे—"महात्मन्! आप मेरे नित्य गुरु हैं, यह आपके मुखसे निकला है, इसी कारण मन्त्रका इतना माहात्म्य है। आपकी असीम प्रभाकी एक कणिका इस मन्त्रमे सङ्क्रान्त हुई है, इसी कारण इसमें सर्वलोक-पावनकारिणी शक्ति उत्पन्न हुई है। इसके बलसे कितने ही नर-नारियोंका दुःख नष्ट हो गया और इसके बलसे मैं गुरु-वाक्य-उलङ्घन-रूप महापातक करनेपर भी आपका देव-दुर्लभ आलिंगन पाकर सदाके लिये कृतार्थ हो गया। आप मुझे बालक समझकर, दास समझकर, सदा अपने चरणोंमें स्थान दें, यही मेरी प्रार्थना है।"

श्रीरामानुजाचार्यके विनयसे अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीगोष्ठीपूर्णने अपने पुत्र सौम्यनारायणको उनके शिष्य-रूपमें अर्पण किया। गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीरामानुजाचार्य शिष्योंके साथ श्रीरंगम्‌के लिये प्रस्थित हुए। इस घटनाके अनन्तर सभीने श्रीरामानुजाचार्यको साक्षात् लक्ष्मणावतार समझा। श्रीरामानुजाचार्यको श्रीगोष्ठीपूर्णने स्वयं ही समयान्तरमें चरम श्लोकार्थका भी उपदेश दिया।

—*:*:*—

चतुर्दश अध्याय

शिष्योंको शिक्षा-दान और स्वयं शिक्षा-ग्रहण

श्रीरंगमस्थ अपने मठमे आकर यतिराज कुछ दिनों तक ठहरे। उस समय उनके शिष्य श्रीकूरेशने श्रीरामानुजके समीप चरम श्लोकका अर्थ जाननेके लिये अपनी उत्कण्ठा प्रकाशित की। श्रीरामानुजने उत्तर दिया—"कूरेश! मेरे गुरु श्रीगोष्ठीपूर्णने आज्ञा दी है कि एक वर्ष तक अभिमानलेश-शून्य होकर ब्रह्मचर्य और निरतिशय दासके द्वारा जो गुरुकी सेवामे लगे रहें, उन्हींको मन्त्रार्थका उपदेश देना, दूसरेको नहीं। अत तुम भी उसी प्रकार एक वर्ष काल बिताओगे, तदनन्तर मैं तुम्हे श्लोकार्थका उपदेश करूँगा।" श्रीकूरेशने कहा—"हे महानुभाव! जीवन अत्यन्त अस्थिर है, इसका निश्चय कैसे हो सकता है कि मैं एक वर्ष तक जीता ही रहूँगा? अतः शीघ्र ही मैं मन्त्रार्थका अधिकारी होऊँ, आप वैसा ही उपाय बतलावें।" यह सुनकर यतिराजने कहा—"शास्त्रोंमे लिखा है कि जो एक मास तक अनशन व्रत धारण करे, उसे एक वर्षके ब्रह्मचर्यका फल होता है। अत· तुम एक मास तक अनशन व्रत धारण करो।" इसी प्रकार आचरण करके श्रीकूरेशने महीनेके अन्तमे श्लोकार्थ प्राप्त किया।

उनके दूसरे शिष्य दाशरथिने भी श्लोक-रहस्य जाननेकी इच्छा प्रकाशित की। श्रीरामानुजने उनसे कहा—"तुम हमारे आत्मीय और सद्ब्राह्मण-कुलोत्पन्न हो, अत तुम श्रीगोष्ठीपूर्णके समीप जाकर रहस्यार्थ जान लो, यही हमारी इच्छा है। तुम आत्मीय हो, इस कारण तुम्हारे अनेक दोषोंको मैं देख भी नहीं सकता। इस कारण जो मैंने कहा है, वही करो।" दाशरथि बड़े पण्डित

थे, और सम्भवत उनको अपने पाण्डित्यका अभिमान भी था। इसी कारण यतिराजने उन्हे श्लोक-रहस्यार्थ जाननेके लिये श्रीगोष्ठीपूर्णके समीप जानेको कहा।

श्रीरामानुजकी आज्ञाके अनुसार दाशरथि श्रीगोष्ठीपूर्णके समीप गये, परन्तु छ महीने तक बराबर आते-जाते रहनेपर भी महात्माने उनपर कृपा नहीं की। अनन्तर एक दिन उन्होंने कृपा करके कहा—"दाशरथे! तुम आत्मीय और परम पण्डित हो, यह मैं जानता हूँ। विद्या, धन और सत्कुलमे जन्म आदिसे क्षुद्रचित्तमे ही मदान्धता उत्पन्न होती है। सज्जनोंको उक्त बातोंसे शान्ति ही मिलती है, इस बातको स्मरण रखकर तुम अपने गुरुके ही समीप जाओ। वे ही तुम्हे रहस्यार्थ बतलावेंगे।" इस प्रकार उपदेश प्राप्त कर दाशरथि श्रीरामानुजके समीप गये और सब बातें यथावत् उन्होंने निवेदन कीं। उसी समय अतुला नामकी श्रीमहापूर्णकी कन्या वहाँ आई और यतिराजसे यों कहने लगी—"भाई! पिताने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। उसका कारण मैं कहती हूँ, सुनो। मैं आज ही अपने ससुरालसे आई हूँ। वहाँ प्रतिदिन प्रात काल और सायकाल रसोईके लिये मुझे एक दूरके तालाबसे जल लाना पड़ता है। मार्ग कठिन और जनशून्य होनेके कारण बड़ा कष्ट सहना पड़ता है। यह बात कल मैंने अपनी साससे कही थी। यह सुनकर सहानुभूति करना तो दूर रहा, वे बहुत क्रुद्ध होकर कहने लगीं—'बापके घरसे एक रसोई बनानेवाला तो ला नहीं सकती। हमारी ऐसी गृहस्थी नहीं है कि तुम्हारे लिए एक नौकर रख दूँ और तुम पैरपर पैर रखकर बैठी रहो।' इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ और पिताके घर आकर मैंने सब बातें कहीं। उन्होंने कहा—'बेटी! तुम अपने धर्मभ्राता श्रीरामानुजके समीप जाओ, वे ही इसका प्रबन्ध करेंगे।' इसीसे मैं तुम्हारे पास आई हूँ। अब बतलाओ, क्या करना होगा।"

यह सुनकर श्रीरामानुजने अतुलासे कहा—"बहिन! तुम अपना मन दु:खी मत करो। यहाँ एक ब्राह्मण है, मैं उसे तुम्हारे साथ भेज दूँगा। वह तालाबसे जल भी लावेगा और रसोई आदिका सब काम भी करेगा।" यह कहकर उन्होंने दाशरथिकी ओर देखा। गुरुका अभिप्राय जानकर वे बड़े आग्रहसे अतुलाके अनुवर्ती हुए और उसके सासुरेमे जाकर बड़ी भक्तिसे पाचक आदिका काम करने लगे। दाशरथिको वहाँ रहते छ महीने बीत गये। एक समय कोई वैष्णव शास्त्रके एक श्लोककी व्याख्या करने लगा। वह जिनको व्याख्या सुना रहा था, वे बडे आग्रहके साथ सुनते थे। दाशरथि भी वहीं बैठे थे। उन्होंने श्लोकार्थ सुनकर समझा कि व्याख्या करनेवाला भ्रममें पड़ा है और श्रोता यदि उसी अशुद्ध व्याख्यापर विश्वासकर बैठें, तो उनके अमगलकी सम्भावना है। अतएव वे अर्थका प्रतिवाद करने लगे। इससे व्याख्याताको बड़ा कष्ट हुआ। उसने कहा—"मूर्ख, चुप रह, कहाँ शृगाल और कहाँ स्वर्ग! कहाँ रसोईदार और कहाँ शास्त्र! भला शास्त्रकी बातें तुम क्या जानो, पाकशालामें जाकर तुम अपनी निपुणता दिखलाओ।" महात्मा दाशरथि इन बातोंपर कुछ भी ध्यान न देकर व्याख्या करने लगे। उनकी व्याख्या ऐसी शुद्ध और मधुर हुई कि उसको सुन सभी मोहित हो गये। यहाँ तक कि स्वय व्याख्याताने आकर चरण-स्पर्शपूर्वक क्षमा-प्रार्थना की और पूछा—"आपके समान पण्डित इस दासवृत्तिको क्यों करता है?" उन्होंने कहा—"गुरुकी आज्ञासे मैंने इस वृत्तिका अवलम्बन किया है।" जब उन लोगोंने जाना कि वे यतिराज श्रीरामानुजके दाशरथि नामक महापण्डित शिष्य हैं, तब वे सब मिलकर श्रीरगम्में यतिराजके समीप उपस्थित हुए और विनीत भावसे उन लोगोंने कहा—"हे प्रात स्मरणीय महात्मन्! आपके उपयुक्त शिष्य

महानुभाव दाशरथिसे अब और पाक-कार्य कराना उचित नहीं । अब उन्हे अभिमानका लेश-मात्र भी नहीं है । अब वे साक्षात् परमहस-स्वरूप हो गये हैं। अत. आप आज्ञा दें कि हम लोग आदरपूर्वक उनको आपके चरणोंमे लावें ।" यह सुनकर यतिराज बहुत प्रसन्न हुए और उन लोगोंके साथ स्वय जाकर उन्होंने आलिगनपूर्वक दाशरथिको आशीर्वाद दिया । तदनन्तर श्रीरगम् ले जाकर यतिराजने उन्हे रहस्यार्थका उपदेश दिया । दाशरथि वैष्णव-सेवा द्वारा कृतकृत्य हुए थे । इसी कारण उनका नाम 'वैष्णवदास' हुआ ।

इसके अनन्तर श्रीरामानुज श्रीमहापूर्णकी आज्ञासे श्रीवररगसे पुन. द्राविड़ प्रबन्ध पढ़ने लगे । तदनन्तर मालाधर नामक श्रीयामुनमुनिके एक शिष्यको लेकर श्रीगोष्ठीपूर्ण श्रीरामानुजके समीप गये और कहने लगे—"वत्स ! ये महापण्डित हैं और हम लोगोंके गुरु श्रीयामुनमुनिके शिष्य हैं। ये शठारि-रचित 'सहस्रगीति'का अर्थ विशेष रूपसे जानते हैं। अत इनसे वह सब पढ़कर तुम कृतार्थ होओ।" गुरुकी आज्ञा-शिरोधार्यकर श्रीरामानुज स्वामी मालाधरसे पढ़ने लगे । एक दिन पढ़ते समय मालाधरकी व्याख्याको ठीक न समझकर वे स्वय अपनी व्याख्या करने लगे । मालाधर शिष्यके ऐसे आचरणको धृष्टता समझ अपने घर चले गये । श्रीगोष्ठीपूर्ण लोगोंसे यह सवाद सुनकर मालाधरके निकट गये और पूछने लगे—"समस्त 'सहस्रगीति'का अर्थ तो श्रीरामानुजने समझ लिया है न ?" जो-कुछ हुआ था, वह मालाधरने कहा । यह सुनकर श्रीगोष्ठीपूर्णने कहा—"भाई, तुम उनको सामान्य मनुष्य मत समझो । श्रीयामुन-मुनिके हृद्गत भावोंको जिस प्रकार वे जानते हैं, वैसा न मैं और न तुम ही जानते हो । साक्षात् लक्ष्मण मनुष्योंके कल्याणार्थ श्रीरामानुजके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । अत वे जो अर्थ करें, चाहे तुमने श्रीयामुनमुनिके मुखसे वैसा न भी

सुना हो, तो भी तन्मुख विनि-मृतके समान उसे समझना ।" मालाधर श्रीगोष्ठी-पूर्णके कहनेके अनुसार पुनः श्रीरामानुजके समीप जाकर उन्हें पढ़ाने लगे । एक दिन मालाधर किसी श्लोककी अन्यथा व्याख्या करने लगे । अतः श्रीरामानुजने उस श्लोककी व्याख्या स्वयं करनी प्रारम्भ की । अबकी बार मालाधर विरक्त नहीं हुए, किन्तु मनोयोगपूर्वक उस व्याख्याको सुनने लगे । श्लोकके भीतर ऐसे रहस्य भरे पड़े हैं, यह बात उन्होंने स्वप्नमें भी नहीं जानी थी । उन्होंने बड़े आनन्दसे श्रीरामानुजकी प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम किया और अपने पुत्र सुन्दरवाहुको उनका शिष्य करा दिया । इस प्रकार मालाधरके निकट 'सहस्रगीति' की शिक्षा प्राप्तकर श्रीरामानुजने श्रीवररंगसे धर्म-रहस्य सीखनेका निश्चय किया । देव-गान-विशारद श्रीवररंग जब श्रीरंगनाथ स्वामीके सामने नाच-गाकर थक जाते थे, तब श्रीरामानुज उनके पैर दबाते थे । वे प्रत्येक रात्रिको उनके लिये अपने हाथसे दूध तैयारकर उनको भोजनके लिये देते थे ।

इसी प्रकार छः महीने बीत जानेपर श्रीवररंगने उनपर कृपादृष्टि की । पैर दबानेके समय यतिराजसे उन्होंने कहा—"वत्स ! तुम मेरा सर्वस्व लेनेके लिये मेरी सेवा करते हो, यह मैं जानता हूँ । आज मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ । आओ, तुमसे मैं अपने हृदयकी बातें कहूँ ।" यह कहकर वे कहने लगे—"वत्स ! जो मैं कहता हूँ, वही चरम पुरुषार्थ है —

'गुरुरेव परब्रह्म गुरुरेव परधनम् ।
गुरुरेव परः कामो गुरुरेव परायणम् ॥
गुरुरेव पराविद्या गुरुरेव परागतिः ।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरोगुरुः ॥
उपायश्चाप्युपेयश्च गुरुरेवेति भावय ।'

—गुरु ही परब्रह्म, गुरु ही सर्वश्रेष्ठ धन, गुरु ही सब काम्य वस्तुओमें श्रेष्ठ, गुरु ही परम आश्रय, गुरु ही ब्रह्मविद्या-स्वरूप और गुरु ही श्रेष्ठ गति हैं। वे ही ससार-सागरके कर्णधार हैं, इस कारण उनसे गुरुतर दूसरा नहीं है। उपाय भी वे ही हैं और स्वय प्राप्य भी वे ही हैं।" यह रहस्य सुनकर यतिराजने अपनेको कृतार्थ समझा। उनके मनके समस्त अभाव दूर हो गये। इससे वे दर्शनीय परमानन्दमय हो गए। 'गद्यत्रय' नामक अपने ग्रन्थमें अपने इस विपुल आनन्दको उन्होंने किसी प्रकार प्रकाशित किया है। तभीसे उनको साक्षात् श्री रगनाथ स्वामी जानकर लोग पूजा करने लगे।

श्रीवररग नि सन्तान थे। उनका एक प्रियतम छोटा भाई था। उसका नाम था गोट्टनम्बि। उन्होंने अपने छोटे भाईको श्रीरामानुजका शिष्य करा दिया। श्रीकाञ्चीपूर्ण, श्रीमहापूर्ण, श्रीगोष्ठीपूर्ण, श्रीमालाधर और श्रीवररग—ये पाँचों महात्मा श्रीयामुनमुनिके अन्तरग शिष्य थे। यतिराज इन पाँचोंके निकट शिक्षा पाकर दूसरे श्रीयामुनाचार्यके समान शोभने लगे। क्योंकि श्रीयामुनमुनिने अपने पाँचों शिष्योंमें पाँच विभाग करके रहस्योंको रख छोड़ा था। इस समय वह पाँचों विभाग श्रीरामानुजमें एकत्रित हुए हैं, इस कारण वे पूर्ण आकारसे बिराजने लगे। यतिराजकी विभूतिकी अधिकता ही इसका प्रधान प्रमाण है। श्रीभगवान्का साक्षात् करके उनके सहित वाक्यालाप करनेकी शक्ति उनमें अधिक थी और ससारके दु.खोंसे दु खित मनुष्योंको भगवान्के चरणोंमें ले जाकर उनके दु ख हटानेकी शक्ति भी उनमें अपार थी। इसी कारण लोग उनको उभय-विभूति-पति कहते थे। उनके दर्शनसे साक्षात् सन्तापका भी सन्ताप दूर होता था।

—**—

पंचदश अध्याय

श्रीरंगनाथ स्वामीके प्रधान सेवक

दक्षिण-देशमे मुसलमानोका अत्याचार अपेक्षाकृत थोड़ा हुआ था। इस कारण आर्यावर्त्तकी अपेक्षा वहाँ मन्दिरोंकी सख्या अधिक है। उस प्रान्तसे प्राचीनतम एव ऋषि-सेवित तथा सिन्धु और जाह्नवीके द्वारा पवित्र आर्यावर्त्त-प्रदेशको देवालय-शून्य कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं है। यद्यपि मानवी शिल्प-महिमासे यह देश अपनेको महिमान्वित नहीं समझ सकता, तथापि इस विचित्र ससारकी जिस आदि शिल्पीने रचना की है, उस अद्वितीय ब्रह्माण्डपतिका यह बनाया हुआ है ऋषि और महर्षियों द्वारा सेवित; सर्वसौन्दर्य गाम्भीर्यमय, सत्वगुण-प्रधान, उत्तुङ्ग हिमाचल, आर्यभूमिका गौरव-स्वरूप होकर तुलनामें दक्षिण-देशके गौरवको सूर्य-प्रकाशके सामने खद्योतके प्रकाशके समान बना रहा है। मनुष्यका शिल्प कभी निर्दोष नहीं हो सकता, और वह केवल प्राकृतिक रचनाका अनुकरण-मात्र है, किन्तु स्वय प्रकृतिदेवी ही मानो हिमालय-रूप बड़ा मन्दिर बनाकर उसमें बहुत दिनोंसे अपने इष्टदेवकी उपासना कर रही है। स्वाभाविक और कृत्रिम सौन्दर्यमें भेद है, और एककी तुलनामे दूसरा असार ठहरता है, यह बात भी स्पष्ट है। अतएव अनेक देवालय-शोभित होनेपर भी सुन्दरताकी दृष्टिसे दक्षिण-देशको सर्वदा आर्यावर्त्तके पैरोंपर गिरा रहना पड़ेगा।

वह चाहे जो हो, परन्तु यदि प्राचीन हिन्दुओंका शिल्प-कौशल देखना

चाहो, तो बिना दक्षिण-देशकी भूमि देखे, उसकी सम्भावना भी नहीं है। दक्षिण-देशकी लम्बाई और चौड़ाई दोनों विशाल हैं। श्रीरंगनाथका मन्दिर इतना बड़ा है कि पुजारी लोग परिवार-सहित वहीं रहते हैं। उसी विशाल आँगनमें एक ओर खम्भोंपर एक विशाल मण्डप सुशोभित हो रहा है। जिस समय अंगरेज़ों और फ़रासीसियोंमें दक्षिण देशके लिये युद्ध हुआ था, उस समय समस्त फरासीसी सेनाने उस मण्डपके एक भागमें आश्रय लिया था। इससे मन्दिरकी विशालता अनायास ही समझमें आ सकती है।

श्रीरामानुजाचार्यके समयमे श्रीरंगनाथके मन्दिरका प्रबन्ध स्थानिक नामके कईएक कैङ्कर्यकर्त्ताओके अधीन था। स्वामीजी भगवान्‌के अर्चन, पूजन, भोग, राग, सेवा, उत्सव आदिमें नानाविध परिवर्त्तन-परिवर्धनकर तदनुसार कार्य करनेके लिये उन स्थानिकोंको दबाते थे। इससे वे स्वामीजीके ऊपर विरक्त थे। प्रकाश रूपसे वे स्वामीजीका कुछ कर नहीं सकते थे, तो भी भीतर ही-भीतर उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी। उनमे से एकने क्रोधान्ध होकर निश्चय कर लिया कि किसी प्रकारसे स्वामीजीका वध कर देना चाहिए। स्वामीजी प्रतिदिन सात घरोंमें भिक्षाटन करते थे। उन गृहस्थोंमें से एकको स्वाधीनकर उस दुष्ट स्थानिकने स्वामीजीको भिक्षान्नमे विष मिलाकर देनेका प्रबन्ध किया। गृहस्थने लालचमें पड़कर इस दुष्ट कर्मको स्वीकार भी कर लिया था। उस गृहस्थने स्वामीजीको भिक्षामें विषमिश्रान्न देनेके लिये अपनी पत्नीको प्रेरित किया। उस साध्वीने पतिको इस दुष्ट कर्मसे विरत करनेके लिये अनेक प्रयत्न किये, तो भी उस दुष्टने अपना सकल्प न छोड़ा। वह साध्वी पत्नी पतिकी आज्ञाका पालन करनेको बाध्य हुई। फिर भी उसने मनमें निश्चय कर लिया कि किसी प्रकारसे हो, मैं स्वामीजीको बचाऊँगी। एक दिन जब स्वामीजी भिक्षाके लिये उस घरपर

गये, तब पतिकी प्रेरणासे वह साध्वी विषमिश्रान्न भिक्षामें देकर, नियमके विरुद्ध साष्टाङ्ग प्रणामकर, दूर खड़ी हो गई। स्वामीजीने उस स्त्रीको भिक्षा देकर प्रणाम करते देख भावज्ञ होनेके कारण मनमें निश्चय किया कि हो-न-हो अवश्य ही इस अन्नमें कुछ दोष है। न हो तो भी यह स्त्री इसको पानेसे निषेध कर रही है। इस प्रकार निश्चय होनेपर स्वामीजीके मनमें बड़ा भाड़ी पश्चात्ताप हुआ कि ये लोग बिना कारण इस प्रकार अनर्थ कर पापभागी क्यों हो रहे हैं। स्वामीजीने उस दिनके भिक्षान्नको कावेरीमें बहा दिया और स्नानकर मठको लौट गये, उस दिन अन्न ग्रहण नहीं किया।

इस सवादको सुनकर श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजी श्रीरगम् पधारे। आपके स्वागतके लिये श्रीरामानुज कावेरी-तीर तक गये। मध्याह्नका सूर्य प्रखर किरणों से जगतको तपा रहा है। कावेरीके तीरकी बालुका अग्निके समान तप्त हुई है। वहींपर श्रीगोष्ठीपूर्णको देखकर श्रीरामानुजने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे उस प्रकार बड़ी देर तक पड़े रहे, तो भी श्रीगोष्ठीपूर्णने उठनेकी आज्ञा नहीं दी। किडाम्बियाच्चान्ने देखा कि श्रीगोष्ठीपूर्णका हृदय बड़ा कठोर है। वह क्रोधान्वित हो श्रीगोष्ठीपूर्णसे कहने लगा—"यह कैसा शिष्याचार्य-क्रम है? क्या कोमल पुष्प-मालाको कोई धूपमें डालता है?" यह कह वह श्रीरामानुजको उठा और अपने शरीरके ऊपरकर स्वय नीचे पड़ गया। अब श्रीगोष्ठीपूर्णकी मौनमुद्रा भग्न हुई। वे यह कहते हुए कि मैं ऐसे ही पुरुषको ढूँढता था, श्रीरामानुजको उठा गाढ़ाङ्गिनकर आनन्दाश्रु प्रवाहित करने लगे। पश्चात् उन्होंने आज्ञा दी कि आजसे भिक्षाटन छोड़कर तुम इन्हीं किडाम्बियाच्चान्के हस्तसे रसोई बनवाकर प्रसाद स्वीकार किया करो। उस दिनसे किडाम्बियाच्चान् श्रीरामानुजको स्वहस्तसे पाक बना भिक्षा देने लगे।

उधर स्थानिकने सुना कि उसकी स्त्री अपने कार्यमें असफल हुई है, तब वह बहुत दु खी हुआ। स्त्रियोंका मन स्वभावत कोमल होता है, इस कारण उसने स्त्रीके अपराधको क्षमा किया। उसी समय एक और उपाय सोचकर वह मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। श्रीरामानुज प्रतिदिन सन्ध्या समय श्रीरगनाथजीके दर्शनके लिये मन्दिरमे जाते थे। उस दिन भी वे नियमानुसार गये। प्रधान सेवकने उन्हें चरणामृत दिया। उन्होंने पी लिया, परन्तु यह विष-मिश्रित है, इस बातको भी उन्होने ताड लिया। इससे उनके हृदयमें किसी प्रकारका डर नहीं हुआ, किन्तु जरामरणनाशी अमृतके पीनेसे मनुष्य जिस प्रकार हर्षित होता है, उसी प्रकार हर्षित होकर वे श्रीरगनाथ स्वामीको सम्बोधन करके कहने लगे—"कृपानिधे! इस दासपर इतनी दया किस पुण्यसे हुई? यह देवदुर्लभ अमृत हमें आज प्राप्त हुआ है, धन्य है आपकी दया!" यह कहकर आनन्दाधिक्य होनेके कारण श्रीरामानुज नृत्य करते हुए मन्दिरके बाहर चले गये। प्रधान सेवकने सोचा कि विषने काम किया है, इसी कारण पैर इधर-उधर पड़ते हैं। इससे वह आनन्दित हुआ और सोचने लगा, कल प्रात काल ही श्रीरामानुजका चिता-सस्कार होगा, क्योंकि जितना विष मैंने दिया है, वह बलवान् दस मनुष्योंको एक घण्टेमें मारनेके लिये पर्याप्त है।

दूसरे दिन प्रात काल श्रीरामानुजका चिता-सस्कार होना तो दूर रहा, प्रत्युत हज़ारो मनुष्य 'भज यतिराज, भज यतिराज, यतिराज भज मूढ़मते'—उनकी इस कीर्तिके गानके द्वारा आकाशको गुँजाते हुए प्रधान सेवकके हृदयको विदीर्ण करने लगे। घरसे बाहर आकर उसने देखा कि श्रीरगम्के रहनेवाले समस्त नर-नारी यतिराज श्रीरामानुजको पुष्पोंसे विभूषित करके उनके सामने उक्त नवीन गाथाका गान कर रहे हैं। यतिराजके दोनों नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे

हैं। वाह्यदृष्टि अन्तर्हित हो गई है। मन, प्राण आदि सभी भगवच्चरणोमे समर्पित कर दिये हैं। उनकी देवतुल्य कान्ति और अलौकिक ज्योतिको देखकर उस राक्षसके हृदयमे भी सत्व गुणका सचार हुआ। वह अपनी विष-प्रयोग-रूप भयानक घातकताको सोचकर, श्रीरामानुजको मृत्युसे परे देवता समझकर, घबड़ा गया। वह उस भीड़मे दौड़ता हुआ जाकर श्रीरामानुजके चरणोंपर गिर पडा। इससे कीर्तन करनेवाले ठहर गये और सभी प्रधान-अर्चककी ओर देखने लगे। तब पश्चात्तापके कारण रोता हुआ अर्चक कहने लगा—"हे यतिराज! आप मनुष्य नहीं हैं, आप साक्षात् विष्णु हैं। शरीर धारण करके हमारे समान दुरात्माओंका नाश करनेके लिये आप अवतीर्ण हुए हैं। तब प्रभो! अब विलम्ब क्यों? शीघ्र ही इस दुरात्माका नाशकर पृथिवीका भार हरण कीजिये। ओह! मैं कितना बड़ा पापी हूँ! कितने मनुष्योंको मैंने विष देकर मार डाला है! आपको भी मारनेका मैंने सकल्प किया था, परन्तु मैं नहीं जानता था कि आप मृत्युके भी मृत्यु-स्वरूप हैं। आपने प्रत्येक प्रलय-कालमें कितने यमोंका नाश किया है और प्रलय-कालके अन्तमें कितने यमराजोंकी सृष्टि की है, इसकी कौन सख्या कर सकता है? मैं अत्यन्त नराधम हूँ। आपके चरण स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ। मुझको उचित दण्ड देकर मेरे पापोंका आप प्रायश्चित्त-विधान करें; अन्धतामिस्र नामक नरकमें मुझे भेजिये। दु:सह कष्टोंके कारण सम्भव है, मेरे पापोंका बेड़ा हल्का हो जाय। हे दीनशरण! अब आप विलम्ब क्यों करते हैं? मुझे हाथीके पैरों-तले अथवा धधकते अगारमे रखवा दीजिये। अब एक मुहूर्त भी मुझे जीनेकी इच्छा नहीं है। नरक, नरक, नरक, तुम कहाँ हो, शीघ्र आओ, इस महापातकीको ग्रहण करो!" इतना कहकर वह सिर पटकने लगा। चारो ओरसे उसे पकड़नेके लिये लोग दौडे। उसका शरीर तब तक लहूलुहान

हो गया था। उसी समय बाह्यज्ञान प्राप्तकर श्रीरामानुजने कहा—"भाई, अबसे हिंसा-द्वेषके कारण राक्षसी व्यवहारको छोड़ दो। श्रीरङ्गनाथ स्वामीने तुम्हारे अपराध क्षमा किये।" अर्चकने कहा—"हमारे समान पातकोंपर भी आपकी इतनी दया! आपका शरीर ही दयासे गठित हुआ है। आपने पापिनी पूतनाको माताओंके साथ एक लोकमें वास करनेका अधिकार दिया है।" यतिराज स्नेह-परवश होकर उसके शरीरपर हाथ फेरने लगे। उनके स्पर्शसे अर्चकका समस्त सन्ताप दूर हुआ। उसने अपनी पिशाची वृत्ति छोड़कर देवत्व प्राप्त किया।

षोड़श अध्याय

यज्ञमूर्ति

यज्ञमूर्ति नामक एक दिग्विजयी दाक्षिणात्य पण्डित आर्यावर्त्तके पण्डितोंको परास्त करके अपने देशको लौटा। भागीरथीके तीरपर उसने सन्यास ग्रहण किया था। अत उसने जब सुना कि श्रीरामानुजाचार्य नामक एक वैष्णव सन्यासी मायावादका खण्डनकर अपने सिद्धान्तका प्रचार कर रहा है, तब शीघ्र ही वह श्रीरंगम्में उपस्थित हुआ। पुस्तकोंसे भरा एक छकड़ा भी उसके पीछे-पीछे चला, क्योंकि वह जहाँ जाता था, वहाँ अपनी समस्त पुस्तकें अपने साथ ले जाया करता था। यतिराजके सामने जाकर उसने शास्त्रार्थकी भिक्षा माँगी। तब शान्तमूर्ति श्रीरामानुजने हँसते हुए कहा—"महात्मन्! शास्त्रार्थ की आवश्यकता क्या है, मैं आपसे परास्त हूँ। आप दिग्विजयी पण्डित हैं, आपकी सर्वत्र ही जीत है।" यज्ञमूर्तिने कहा—"यदि आप अपना परास्त होना स्वीकार करते हैं, तो इससे समझना पड़ता है कि आपने भ्रान्त श्रीवैष्णव मतका परित्यागकर अभ्रान्त मायावादको ग्रहण किया।" यतिराजने कहा—"मायावादी ही तो भ्रान्ति-भ्रान्ति करते उन्मत्त हुए हैं। उनके मतसे तर्क, युक्ति आदि सभी माया है, अत मायावादको किस प्रकार अभ्रान्त माना जायगा?" यज्ञमूर्तिने कहा—"देश, काल और निमित्तके मध्यमें जो-कुछ वर्तमान है, वह सभी मायामय है। इसी कारण मायावादी कहते हैं कि बिना

इन तीनोंका त्याग किये अभ्रान्त सत्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अत आप लोग भ्रान्त न होकर हम लोग कैसे भ्रान्त हो सकते हैं ?"

इस प्रकार शास्त्रार्थ आरम्भ होकर सत्रह दिनो तक बराबर होता रहा। अन्तिम दिन यज्ञमूर्तिने श्रीरामानुजकी युक्तियोंका खण्डन कर दिया। इससे कुछ दु खी होकर यतिराज अपने मठमे चले गये और मठस्थ श्रीवरदराजके सामने हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे नाथ! प्राचीन महात्मा जिन वैष्णव शास्त्रोंके अवलम्बनसे आपके चरण-कमलके मधुपानके अधिकारी हुए थे, कालक्रमसे वह महान् वैष्णव शास्त्र मायावाद-रूप मेघसे आच्छन्न हुआ है। मायावादी कूट युक्ति द्वारा अपनेको और मोहान्ध जीवोको मोहित कर रहे हैं। उनके तर्क ऐसी भ्रान्तिमे डाल देते हैं कि कभी-कभी सात्विक महात्माओंको भी चकित होना पड़ता है। हे आनन्दधामन्! और कितने दिनो तक अपनी सन्तानको अपने चरणसे दूर रखोगे ?" यह कहकर पर-दु खकातर यतिराज अश्रुविसर्जन करने लगे। रात्रिको स्वप्नमे देवराजका साक्षात्कार करके उन्होंने यह आश्वासवाणी सुनी—"यतिराज! घबराओ मत। भक्तियोगका माहात्म्य तुम्हारे द्वारा शीघ्र ही जगत्मे प्रकाशित होगा। तुमको मैंने एक नवीन प्रतिभाशाली शिष्य दिया। तुम अपने परमाचार्य यामुनाचार्यके मायावाद-खण्डन-ग्रन्थके आधारपर कल वाद चलाओ। विजय होगी।"

प्रात काल शय्या त्याग करते ही उन्हे बड़ा आनन्द हुआ। इस अमृतनिस्यन्दिनी वाणीने उनके हृदयके समस्त दु.खोको दूरकर उनके मुख-मण्डलको एक स्वर्गीय ज्योति द्वारा प्रकाशित किया। वे प्रातःकृत्य समाप्तकर यज्ञमूर्तिके समीप उपस्थित हुए। उनका अलौकिक रूप देखकर मायावादी चकित हो गया। वह सोचने लगा—कल जानेके समय श्रीरामानुजका मुख

मलिन हो गया था, परन्तु आज देखता हूँ, ये स्वर्गीय देवताके समान प्रतीत होते हैं। निश्चय ही देवबल प्राप्त करके ये आये हैं। अब इनके साथ शास्त्रार्थ करना व्यर्थ है। इस महापुरुषके शरणागत होना ही कल्याणकर है। व्यर्थ शुष्क शास्त्रार्थ करके मैंने अपना जीवन व्यतीत किया है; अहकारको बढ़ा कर चित्तको कलुषित कर दिया है। जब चित्तकी शुद्धि ही नहीं हुई, तब ब्रह्मज्ञानका कौन ठिकाना है? इन महापुरुषका स्वभाव कैसा निर्मल है! क्रोध, अहकार, अभिमान आदिने इनको स्पर्श भी नहीं किया है। इनका मुखमण्डल सर्वदा एक अलौकिक दिव्य कान्तिसे जगमगा रहा है। मैंने इन्हें कितनी कड़ी-कड़ी बातें कही हैं; परन्तु इन्होंने उनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मैं कितनी बार क्रोध और अभिमानमें जला, इसकी गणना ही नहीं हो सकती। मुझको धिक्कार है! इस प्रकारके एक मलिन हृदयका इस प्रकार देवतुल्य महात्माकी बराबरी करनेकी चेष्टा उन्मत्तता है। इनका शिष्य होकर मैं इस पापका प्रायश्चित्त करूँगा। अहकारका समूल नाश करके पवित्रता-रूपी अमृतका आस्वादन करूँगा।

इस प्रकार निश्चित करके पुण्यवान् यज्ञमूर्तिने यतिराजके पैर पकड़कर भक्तिसे प्रणाम किया। इससे कुछ सकुचित होकर यतिराजने कहा—"यज्ञमूर्ते! आप इस प्रकारके अद्वितीय पण्डित होकर ऐसा क्यों कर रहे हैं? आज शास्त्रार्थमें आप विलम्ब क्यों कर रहे हैं?" यज्ञमूर्तिने बड़े विनयसे उत्तर दिया—"महानुभाव! जो तार्किक इतने दिनों तक युक्ति-बाणोंके द्वारा विद्ध करता था, वह हमारे पुण्यफलसे हमारे हृदयराज्यसे चला गया। अतः अब आपके समान महानुभावसे कौन शास्त्रार्थ करे? इस समय दास आपके सामने खड़ा है, उसपर आप कृपा-दृष्टि करें। मैं आपका शिष्य हूँ। आप अपने

पवित्र उपदेशोंसे मेरे हृदयका अन्धकार दूर करके दिव्यालोक प्रकाशित करें। वृथा पाण्डित्याभिमान पोसकर मैंने अहङ्कारको ही बलशाली बनाया है। हाय! मेरे समान मूर्ख और कौन हो सकता है! आप इस अकिंचन दासको अपने चरणोंमें आश्रय देकर कृतार्थ करें।" अकस्मात् यज्ञमूर्तिके इस परिवर्त्तनको देखकर श्रीरामानुज विस्मित नहीं हुए, क्योंकि उन्हें अपने इष्टदेव श्रीवरदराजका कहना स्मरण था। उन्होंने समझा कि उन्हींकी कृपासे यह दाम्भिक पण्डित विनयसे विभूषित होकर मनोहर देवतुल्य कान्तिका भागी हुआ है।

उन्होंने मधुर स्वरसे कहा—"धन्य श्रीदेवराज, आपकी कृपासे पाषाण भी द्रवीभूत हो जाता है। यज्ञमूर्ते! अन्य प्रकारके अभिमान अनायास ही छोड़े जा सकते हैं, परन्तु पाण्डित्याभिमानको छोड़ना कठिन है। 'विद्यादधाति विनयम्', परन्तु यदि विद्या ही अविद्या-रूप होकर दम्भ और मद उत्पन्न करे, तो फिर किसकी सहायतासे मदान्वित दाम्भिक हृदयमे विनयका प्रवेश कराया जा सकता है? केवल भगवत् कृपा ही इस असम्भव व्यापारको भी सम्भव कर सकती है। तुम उसी कृपाके बल ही से आज मानव-कुलके प्रधान शत्रु अहङ्कारको वशमें कर सके हो। तुम बड़े भाग्यवान् हो।" यज्ञमूर्तिने कहा—"जब आपके समान महात्माका मैंने दर्शन पाया है, तब मेरे भाग्यकी सीमा नहीं है। इस समय मुझको क्या करना चाहिये, इसकी आप आज्ञा दें। मैं आपका मूर्ख पुत्र हूँ।" यतिराजने कहा—'वत्स!

हीनो यज्ञोपवीतेन यदि स्याद्ज्ञानभिक्षुकः।
तस्य क्रिया निष्फलाः स्युः प्रायश्चित्त विधीयते॥
गायत्री सहितानेव प्राणायामान्षडाचरेत्।
पुनः संस्कारमाहृत्य धार्यं यज्ञोपवीतकम्॥

उपवीत त्रिदण्डश्च पात्र जलपवित्रकम् ।
कौपिन कटिसूत्रञ्च न त्याज्य यावदायुषम् ॥

—इस वचनके अनुसार यज्ञोपवीत धारण करना तुम्हारा पहला कर्तव्य है।" यज्ञमूर्तिने उसी समय स्वीकार कर लिया। विधिवत् उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया। तदनन्दर यतिराजने उन्हें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कराकर शङ्खचक्राङ्कित किया और देवराजकी कृपासे उन्हे ज्ञानोदय हुआ था, इस कारण 'देवराजमुनि' उनका नामकरण किया। यतिराजने कहा—"वत्स, तुम्हारा परम पण्डित हृदय इस समय अभिमान-रूपी मेघसे मुक्त हुआ है। अत तुम सदुपदेशपूर्ण ग्रन्थ लिखकर लोगोंका कल्याण करो।" गुरुके कथनानुसार यज्ञमूर्तिने द्राविड़ भाषामें 'ज्ञानसार' और 'प्रमेयसार' नामक दो ग्रन्थ लिखे। श्रीरामानुजने उनके रहनेके लिये एक विशाल मठ बनवा दिया।

इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद विद्वान् और परम वैराग्यवान् चार युवक श्रीरामानुजके निकट दीक्षित होनेके लिये आये। यतिराजने उनसे कहा—"तुम लोग देवराजमुनिके निकट जाओ। वे ही तुम लोगोंको शिष्य करेंगे। उनके समान महापण्डित कम ही हैं। केवल पाण्डित्यसे ही उनकी महिमा नहीं है; किन्तु उनके समान भगवद्भक्ति-परायण होना भी कठिन है। वे चारों युवक देवराजमुनिके शिष्य हुए। शिष्योंसे युक्त होकर अपनेको भाग्यवान् समझना दूर रहा, वे सोचने लगे—यह क्या एक बखेड़ा लगा। कहाँ तो बड़े कष्टसे मैं अभिमानके हाथसे छुटकारा पानेके लिये प्रयत्न करता हूँ, कहाँ 'मैं गुरु हूँ' —यह अभिमान आकर मुझे घेरनेको उद्यत है! इस प्रकार सोचते हुए वे अपने गुरुके समीप गये और कहने लगे—"प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ, फिर मुझपर इस प्रकार क्यों कठोरता की जाती है?" यतिराजने कहा—"क्यों, क्या

हुआ ?" देवराजने कहा—"आपकी कृपासे मैंने अभिमान-रूपी राक्षससे छुटकारा पाया है। पुन क्यों आप इस अकर्मण्य दुराचारीको इस अभिमानके हाथ सौंपते हैं ? मुझको गुरु बननेकी आज्ञा न दें। जलमें पद्मपत्रके समान रहनेका अभ्यास मुझे नहीं हुआ है। आप मुझको अपने चरणोंमें ही स्थान दें, मुझे नये मठकी आवश्यकता नहीं है।" उनकी ऐसी बातोंसे श्रीरामानुज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—"वत्स ! मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ही ऐसा किया था। तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। तुम इसी मठमें रहो और मठस्थ श्रीदेवराजकी सेवामें समस्त जीवन व्यतीत करो।" यह आज्ञा पाकर देवराज कृतार्थ हो गये। देवराजकी सेवा और श्रीरामानुजके कैङ्कर्यमें उन्होंने अपना समस्त जीवन बिताया।

सप्तदश अध्याय

यज्ञेश और कार्पासाराम

इसके अनन्तर श्रीरामानुज नम्माल्वार अथवा शठारि-विरचित 'सहस्रगीति' नामक द्राविड़ प्रबन्धमाला अपने शिष्योंको पढ़ाने लगे। उन्होंने इसको पहले श्रीमहापूर्ण और श्रीमालाधरसे पढ़ा था। परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के बलसे अनेक नवीन रहस्यार्थोंकी अवतारणा करके वे शिष्योंको चकित करने लगे। उस प्रबन्धमें एक जगह श्रीशैल अथवा वेङ्कटाचल नामक स्थानका माहात्म्य इस प्रकार लिखा है—यह श्रीशैल पृथिवीका वैकुण्ठ है, जो आजन्म यहाँ वास करते हैं, वे यथार्थमें वैकुण्ठमें वास करते हैं और अन्तमें वैकुण्ठमें जाकर श्रीनारायणके चरणोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। पाठ समाप्त होनेपर उन्होंने शिष्योंसे पूछा—"तुम लोगोंमें से कौन उस श्रीशैलपर आजीवन वास करना चाहता है?" श्रीअनन्ताचार्य नामक एक शिष्यने कहा—"प्रभो! यदि आज्ञा हो, तो मैं उस पर्वतपर यावज्जीवन वास करनेको जाऊँ।" इसपर अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीरामानुजने कहा—"धन्य वत्स, धन्य! तुम्हारे समान कुल-पवित्र करनेवाला पुत्र जिस कुलमें उत्पन्न हुआ है, उसके भाग्यकी सीमा नहीं है। तुमने अपनी चौदह पीढ़ियोंका उद्धार किया। तुम्हारे समान शिष्य पाकर मैं कृतार्थ हुआ।" यह सुन श्रीअनन्ताचार्य गुरुको नमस्कार करके श्रीशैलके लिये चला।

तदनन्तर यतिराजने तीन बार शिष्योंको 'सहस्रगीति' पढ़ाई। पाठ समाप्त होनेपर वे भी शिष्योंको साथ लेकर श्रीशैल पर्वतको ओर चले। भगवान्का नाम-कीर्त्तन ही उनके रास्तेकी सामग्री हुई। पहले दिन उन लोगोंने देहली नगर में विश्राम किया। दूसरे दिन अष्टसहस्र नामक गाँवकी ओर चले। उस गाँवमें श्रीयज्ञेश और श्रीवरदाचार्य नामक उनके दो ब्राह्मण शिष्य रहते थे। उनमें पहला धनी था। श्रीरामानुजने उसी धनी शिष्यके यहाँ ठहरनेकी इच्छासे साथके दो शिष्योंको अपने आनेका सवाद देनेके लिये पहले भेजा। दोनों शिष्योंने बड़ी शीघ्रतासे जाकर यह शुभ सवाद यज्ञेशको दिया। इससे यज्ञेश बड़े आनन्दित हुए और अपने परिवारवालोंको यतिराजका सत्कार करनेके योग्य वस्तुओंको एकत्रित करनेके लिये कहा। स्वय वे भी उन वस्तुओंका निरीक्षण करनेके लिये घरमें गए। इसी कारण वे आये हुए दोनों पथिकोंको पूछना भूल गये। वे गृहस्वामीका इस प्रकारका व्यवहार देख दु खित हुए और श्रीरामानुज के समीप आकर उन लोगोने यथावत् निवेदन किया।

इससे अत्यन्त दु खित होकर यतिराजने दूसरे शिष्यके यहाँ ठहरना निश्चित किया। यह दूसरा शिष्य बिदुरके समान और पवित्र स्वभावका था। प्रतिदिन प्रात.काल भिक्षापात्र लेकर वह भिक्षाके लिये निकलता था और दोपहरके बाद अपने घर लौटता था। भिक्षामें प्राप्त अन्न द्वारा नारायणकी सेवा करके परम सुन्दरी लक्ष्मी नामकी अपनी स्त्रीके साथ बड़े सन्तोषसे अपना निर्वाह करता था। उसके गृहके पास कतिपय कार्पास वृक्ष थे। इस कारण उसे कार्पासारामवरद कहा करते थे। जब श्रीरामानुज शिष्योंके साथ कार्पासारामवरदके द्वारपर गये, तब कार्पासारामवरद भिक्षाके लिये बाहर गये थे। घरमें किसी पुरुषको न देख कर यतिराजने मकानके भीतर जाकर अपने आनेका सवाद गृहस्वामिनीको उद्देश

करके कहा। उस समय स्नान करके लक्ष्मी देवीने एक कपड़ेका टुकड़ा लपेट लिया था और अपना वस्त्र सूखनेके लिये डाल दिया था। इस कारण वह गुरुके सामने न हो सकी तथा उसने करतलध्वनिसे अपनी अवस्था बतलाई। यह जान कर यतिराजने अपना डुपट्टा दूर ही से फेक दिया। उसको पहनकर लक्ष्मी देवी गुरुके सामने आई। तदनन्तर उसने कहा—"महात्मन्! हमारे पति भिक्षाके लिये बाहर गये हैं। आप लोग सुखसे बैठें। इस पैर धोनेके जलको लेकर हमें कृतार्थ करें। सामने ही तालाब है, वहाँ विश्राम करके अपनी थकावट दूर करें। मैं शीघ्र ही भगवान्का नैवेद्य तैयार करती हूँ।" यह कहकर वह घरके भीतर चली गई। घरमे चावलका एक दाना भी नहीं है। किस प्रकार गुरुको सेवाकर उन्हें सन्तुष्ट कर सकूँगी, इसकी वह चिन्ता करने लगी।

उसके घरके पास ही एक धनिक बनियेका घर था। वह बनिया लक्ष्मी देवीके रूपपर मोहित हो गया था। उसने कई बार दूतीके मुखसे धनका लोभ दिखाकर उसे अपने वशमें करना चाहा था; परन्तु किसी प्रकार उसकी निन्दित कामना चरितार्थ नहीं हुई। लक्ष्मी देवीने सोचा—अस्थि मांसमय इस शरीरके बदले गुरु-सेवा करके मैं कृतार्थ क्यों न हो जाऊँ। कलिघ्न नामक एक परम भक्तने चोरी करके अपने इष्टदेवकी सेवा की थी। उसपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने कहा था '—

यन्निमित्त कृत पापमपि पुण्याय कल्पते।
यामनादृत्य तु कृत पुण्य पापाय कल्पते॥

अतएव इसी समय मैं इस सेठके पास जाकर 'तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी', ऐसी प्रतिज्ञा करके अतिथि-सत्कारके उपयुक्त पदार्थ लाऊँगी। इस प्रकार निश्चित करके वह दूसरे द्वारके घरसे बाहर हुई। सेठके समीप जाकर उसने

अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकाशित किया—"सेठजी! आज मैं आपकी अभिलाषा पूरी करूँगी। हमारे गुरु शिष्योंके साथ अतिथि होकर आये हैं। उनकी सेवाके योग्य पदार्थ आप भेजवा दें, तब आपकी इच्छा पूरी हो जायगी।" यह सुनकर वह बनिया अत्यन्त विस्मित हुआ और वह मन-ही-मन कहने लगा—मैं जिसको पानेके लिये कितने ही दिनोंसे प्रयत्न कर रहा हूँ, जिसके लिये कितनी ही दूतियाँ भेजीं और अन्तमें निराश होकर मुझे बैठना पड़ा, वही आज स्वय मेरे निकट आई है। यह देखकर सेठजी बड़े आनन्दित हुए। उसने उसी समय सभी पदार्थ उसी स्त्रीके साथ भेज दिये।

लक्ष्मी देवी श्रीविष्णुके लिये नैवेद्य बनाने लगी। शीघ्र ही भोजन बनाकर उसने शिष्योंके साथ गुरुजीको निमन्त्रित किया। वे बड़े प्रेमसे भोजनकर तृप्त होकर उसे आशीर्वाद देने लगे।

तदनन्तर उसका पति भिक्षा करके घर लौटा और सशिष्य गुरुके दर्शनकर तथा उनको प्रणामकर परम आनन्दित हुआ। जब उसने सुना कि उसकी स्त्रीने अमृतोपम नाना प्रकारके अन्न-व्यञ्जनादि द्वारा उन लोगोंको तृप्त किया है, तब तो उसके आनन्दकी सीमा न रही। वह बड़ा दरिद्र है, उसकी स्त्री कहाँसे ये पदार्थ लाई, यही वह सोचने लगा। जब वह इसका कुछ भी निश्चय नहीं कर सका, तब घरमें जाकर स्त्रीसे उसने पूछा। जो-कुछ जैसा था, वह आद्योपान्त कहकर लक्ष्मी देवी हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

क्रोध करना तो दूर रहा, श्रीवरदाचार्य आनन्दित होकर 'धन्योऽहं, कृतकृत्योऽहम्' कहकर नाचने लगा। वह स्त्रीसे कहने लगा—"तुमने आज अपने सतीत्वका यथार्थ परिचय दिया है। गुरुरूपी नारायण ही एकमात्र पुरुष हैं। वे समस्त प्रकृति-कुलके पति हैं। अस्थि-मासमय शरीरके विनिमयमें तुम जो

आज परम पुरुषकी सेवा कर सकी हो, इससे बढ़कर सौभाग्यका विषय और क्या हो सकता है ? अहा, मैं कैसा भाग्यवान् हूँ ! कौन कहता है कि मैं दरिद्र हूँ ! तुम्हारे समान जिसकी परम भक्तिमती सहधर्मिणी है, उसके भाग्यका क्या कहना है !" यह कहकर वह अपनी स्त्रीका हाथ पकड़कर गुरुके समीप आया और गुरुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके बड़ी देर तक वैसे ही पड़ा रहा। तदनन्तर श्रीवरदाचार्यके द्वारा उसकी स्त्रीका वृत्तान्त सुनकर यतिराज भी चकित हुए।

गुरुकी आज्ञासे दम्पतिने प्रसाद ग्रहण करके थोड़ी देर तक विश्राम किया। तदनन्तर बचा हुआ प्रसाद लेकर दोनों बनियेके घर गये। श्रीवरदाचार्य बाहर रहे, और लक्ष्मी देवीने घरमे जाकर प्रसाद ग्रहण करनेके लिये इस बनियेसे प्रार्थना की। बनियेने बड़े आदरसे प्रसाद ग्रहण किया। अहा ! वैष्णवके प्रसादकी क्या महिमा है ! भोजन समाप्त होनेपर बनिया एक-दूसरे प्रकारका मनुष्य हो गया। उसकी कामवृत्ति न मालूम कहाँ चली गई ! लक्ष्मी देवीको कुदृष्टिसे देखना तो दूर रहा, उसने उसे माता कहकर सम्बोधित किया और कहने लगा—"मैं कैसा महापातक करनेके लिये उद्यत हुआ था ! निषाद जिस प्रकार दमयन्तीको छूनेकी इच्छा करके भस्म हो गया था, मेरे कपालमें भी वैसा ही था। मैं केवल तुम्हारी ही कृपासे बच गया हूँ। माता मेरे अपराध क्षमा करो, और यह नर-पशु जिस प्रकार शुद्ध होकर मनुष्य हो जाय, वैसा उपाय करो। अपने अभीष्ट-देवका दर्शन कराकर मुझे कृतार्थ करो।" सती, बनियेकी इस बातसे विस्मित और प्रसन्न हुई। उसके हृदयके समस्त सन्ताप दूर हो गये। अपने सतीत्वकी रक्षाके कारण उसे बड़ा आनन्द हुआ। यतिराजके समीप जाकर उसने सब हाल कहा, जिससे वह दरिद्र ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ।

वे दोनों वणिक्को साथ लेकर गुरुके समीप आये और उनको प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुए।

शिष्यगण इस अद्भुत व्यापारको देख और सुनकर चकित हो गये और यतिराजकी असीम शक्तिका परिचय पाकर वे उनके चरणोंमें और भी भक्तिमान् हुए। श्रीरामानुजने अपने पवित्र कर द्वारा दम्पती और वणिक्को स्पर्श करके उनके समस्त दुःखोंका नाश किया। वणिक्ने आनन्द तथा आग्रहसे उनके शिष्य होनेकी प्रार्थना की। यतिराजने उसे शिष्य करके कृतार्थ किया। यतिराजने वणिक्से प्राप्त अर्थ उस दरिद्र ब्राह्मणको देकर उसे सुखी करना चाहा। इसपर ब्राह्मणने कहा—"प्रभो! आपके आशीर्वादसे हम लोगोंको किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। भिक्षामें जो-कुछ मिल जाता है, उससे हमारा निर्वाह हो जाता है। धनसे बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं। इससे इन्द्रिय-लोलुपता बढ़ती है और भगवान्के चरणोंसे चित्त दूर हो जाता है। इस प्रकारके अर्थ ग्रहण करनेकी आज्ञा प्रभु दासको न दें।" यह सुनकर यतिराज बहुत प्रसन्न हुए और निर्मल स्वभाव परम भक्तिमान् ब्राह्मणको प्रेमदृष्टिसे देखकर बोले—"आज मैं तुम्हारे समान निस्पृह और पवित्र ब्राह्मणको देखकर प्रसन्न हुआ। तुम्हारी भक्ति और निस्पृहता सभी अनुकरणीय हैं।

जिस समय इस प्रकार वहाँ सभी स्वर्गीय आनन्दका उपभोग करते थे, उस समय यतिराजका वह शिष्य यज्ञेश वहाँ आकर उपस्थित हुआ। वह अपने घरपर गुरुके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसने सुना कि उन्होंने कार्पासाराम-वरदकी सेवा ग्रहण की, तब उसे बड़ा कष्ट हुआ। वह सोचने लगा—मैंने कौन-सा ऐसा अपराध किया है, जिससे गुरुदेवने मेरी सेवा ग्रहण नहीं की। निश्चय ही कोई-न-कोई अपराध अवश्य हुआ होगा। नहीं तो लोक-कल्याण

करना ही जिनके जीवनका उद्देश्य है, वे मुझको क्यों त्यागते ? इस प्रकार सोचते-विचारते वह यतिराजके सम्मुख जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके रोदन करने लगा। यतिराजने उसे सादर उठाकर कहा—"बेटा ! तुम्हारे यहाँ मैंने आतिथ्य ग्रहण नहीं किया, इस कारण क्या तुम दुःखी हुए हो ? इसका कारण वैष्णवापराध है। वैष्णव-सेवाके समान दूसरा धर्म नहीं है। तुमने उस धर्मका अनादर करके बड़ा अपराध किया है। तुमने थके हुए मेरे शिष्योंका सन्मान नहीं किया। इसी कारण मैं तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण नहीं कर सका। आज इस दरिद्र ब्राह्मणने हम लोगोंको कैसा अमृतमय भोजन कराया है, वैसा क्या तुम्हारे समान धनान्ध मनुष्यके यहाँ मिल सकता था ?" यह सुनकर यज्ञेश अत्यन्त दुःखी हुआ और बोला—"प्रभो ! धनान्धताके कारण मुझसे यह अपराध नहीं हुआ है ; किन्तु आपके आनेका आनन्द ही इसका कारण है। मैं बड़ा ही अभागा हूँ, जो आप लोगोंकी सेवा न कर सका।" अन्तमें यतिराजने श्रीशैल पर्वतसे लौटनेके समय उसके आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाकर तथा अनेक प्रकारसे समझाकर उसे विदा किया।

अष्टादश अध्याय

श्रीशैल-दर्शन और गोविन्द-समागम

दूसरे दिन प्रातःकाल अष्टसहस्र गाँवको छोड़कर श्रीरामानुज शिष्योंके साथ काञ्चीपुरकी ओर चले। मध्याह्नके समय वहाँ पहुँचे और श्रीवरदराजका दर्शनकर उन्होंने अपनेको कृतार्थ किया। दूसरे दिन महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्णका दर्शन करके वे बड़े आनन्दित हुए। वहाँ तीन रात्रि निवास करके वे कपिल तीर्थके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ स्नानादि करके उसी दिन वे श्रीशैल पर्वतके समीप उपस्थित हुए। श्रीशैलके दर्शनसे वे परम आनन्दित हुए। बहुत देर तक वे उस भूवैकुण्ठकी ओर देखते रहे। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने सोचा, यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ स्वय श्रीनारायण लक्ष्मीके साथ विराजते हैं। इसी कारण तो इसकी यह दिव्य शोभा है, मानो पृथिवीके समस्त पुण्यपुञ्ज इस पर्वतके आकारमें अवस्थित हैं। इसी पुण्यराशिके ऊपर लक्ष्मीके साथ श्रीनारायण निवास करते हैं। मैं इस अपवित्र शरीरको लेकर इस पर्वतपर चढ़कर कभी इसे अपवित्र नहीं बनाऊँगा। यहींसे प्रतिदिन दर्शन करके अपने शरीर और मनको पवित्र करूँगा। यह निश्चित करके उन्होंने वहीं अपना वासस्थान निर्दिष्ट किया। वहाँके विट्ठलदेव नामक एक राजा श्रीरामानुजके आनेका सवाद सुनकर अपने मन्त्री आदिके साथ वहाँ आये, और शिष्य होनेके लिये निवेदन किया। दयालु स्वभाव

यतिराजने सस्कार द्वारा उसे शुद्ध करके शिष्य बनाया। राजा विट्ठलदेवने गुरु-दक्षिणाके रूपमें इलमण्डप नामक प्रदेश उनको भेंट किया। यतिराजने उक्त प्रदेश दरिद्र ब्राह्मणोंको दानमें दे डाला।

इधर श्रीशैलके निवासी साधु और तपस्वीगण यतिराजके आनेका सवाद सुनकर उनके दर्शनके लिए विशेष उत्कण्ठित हुए। जब उन लोगोंने सुना कि यतिराजने चरण-स्पर्शके भयसे इस पर्वतपर न चढ़नेका सकल्प किया है, तब वे सभी मिलकर उनके समीप गये और अति विनीत भावसे प्रार्थना करने लगे—"महात्मन्, आपके समान महात्मा यदि चरण-स्पर्शके भयसे इस पर्वतपर न चढ़ेंगे, तो साधारण मनुष्य भी उसी प्रकार आचरण करेंगे। वे लोग कहेंगे कि जब महात्मा श्रीरामानुजाचार्य इस पर्वतपर न चढ़े, तब हम लोगोंकी क्या सामर्थ्य है? हम लोग तो स्वभावसे ही मलिन हैं। इस प्रकार सम्भव है, भगवान्‌की पूजा करनेके लिये पुजारी तक भी वहाँ न जायँगे, अतः शीघ्र ही आपको ऊपर चलनेके लिये उद्यत होना चाहिये। आपके समान महात्माओंका हृदय ही श्रीभगवान्‌का यथार्थ मन्दिर है। वहाँ भक्ति-रूपी परम अमृतके द्वारा उनकी निरन्तर पूजा होती है। भक्ति ही भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय पदार्थ है। जिनके हृदयमें वह भक्ति है, वहाँ नारायण नित्य विराजमान रहते हैं। इसी कारण युधिष्ठिरने विदुरको कहा था :—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूता· स्वयम्प्रभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त स्थेनगदाभृता॥

आपके समान महापुरुष भी तीर्थोंमें जाते हैं, इसी कारण तीर्थ तीर्थ कहे जाते हैं।" उन महात्माओंके विनीत वचनको आज्ञाके समान समझकर श्रीरामानुज शिष्योंके साथ श्रीशैल पर्वतपर चढ़नेके लिये उद्यत हुए।

पर्वतकी बहुत ऊँची चढ़ाई होनेके कारण उनका शरीर भूख-प्याससे थक गया। उसी समय ऊपरसे भगवान्का प्रसाद और श्रीपादतीर्थ लेकर ज्ञान और वयोवृद्ध श्रीशैलपूर्ण उनके समीप पहुँचे और प्रसाद तथा तीर्थ उनको देकर उसे ग्रहण करनेके लिये उनसे अनुरोध किया। ऋषितुल्य महात्माको अपने लिये प्रसाद लाते देख यतिराजने कहा—"महात्मन्! आपने ऐसा क्यों किया? इस अधम दासके लिये आपके समान ज्ञानवयोवृद्ध गुरुतुल्य महात्माका कष्ट उठाना बड़ा ही अनुचित हुआ। किसी एक लड़केके हाथ भी तो यह आ सकता था।" यह सुन श्रीशैलपूर्णने कहा—"यतिराज! मैं भी यही सोचकर एक बालक ढूँढ़ रहा था, परन्तु मुझ सा हीनमति बालक दूसरा मिलता ही नहीं।" श्रीशैलपूर्णके इस प्रकार दीनतायुक्त वचन सुनकर श्रीरामानुज चकित हो गये।

उन्होंने शिष्योंके साथ भक्तिपूर्वक प्रसाद ग्रहण करके थोड़ी देर तक वहीं विश्राम किया और तदनन्तर पहाड़पर चढ़कर वे श्रीपति वेङ्कटनाथके मन्दिरके समीप पहुँचे। इनके शिष्य अनन्ताचार्यने उन्हें प्रणाम किया। अपने शिष्यको देखकर यतिराज बड़े प्रसन्न हुए और वे उसे बार बार आशीर्वाद देने लगे। तदनन्तर उन्होंने मन्दिरकी प्रदक्षिणा की। जब वे श्रीवेङ्कटनाथके सामने उपस्थित हुए, तब उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी धारा प्रवाहित होने लगी। उनका बाहरी ज्ञान जाता रहा। बहुत समय तक इसी अवस्थामें रहकर पुनः उन्होंने वाह्य ज्ञान प्राप्त किया। पुजारियोंने बड़ी भक्तिसे उनको श्रीपादतीर्थ और प्रसाद दिया। शिष्योंके साथ उसे ग्रहण करके वे परम आनन्दित हुए। भगवान्के दर्शनके पश्चात् श्रीयतिराजने शिष्यों-सहित सर्वतीर्थमय सरोवरमें स्नान किया। वहाँ तीन रात्रि वास करके वे पर्वतसे नीचे उतरे।

इसी समय श्रीशैलपूर्णका परम अनुगत शिष्य यतिराजका मौसेरा भाई गोविन्द उनके समीप आया। अपने उपकारक और बालमित्रको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। पहले लिखा गया है कि श्रीगोविन्दने श्रीशैलपूर्णसे वैष्णव धर्मकी दीक्षा ली। तबसे गोविन्द श्रीशैलपूर्णके ही समीप रहता था। गुरु-सेवामें उसका इतना अनुराग था कि उसके अतिरिक्त उसे और कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उसका स्वभाव पाँच वर्षके बच्चेके समान था।

श्रीशैल पर्वतसे उतरकर श्रीरामानुज श्रीशैलपूर्णके अनुरोध करनेपर एक वर्ष तक उनके यहाँ रहे। महात्मा श्रीशैलपूर्ण प्रतिदिन उन्हें रामायण पढाते थे। उनकी सुललित और गम्भीर व्याख्याको सुनकर यतिराजकी जिज्ञासा और भी बलवती हुई। उन्होंने एक वर्ष तक वहाँ रहकर समग्र रामायणका अभ्यास किया। वहाँ रहनेके समय वे गोविन्दका आचार-व्यवहार देखकर चकित हुए थे। एक दिन उन्होंने देखा कि उनका बालमित्र गुरुके लिये शय्या बिछाकर उसपर स्वयं सो गया है। गोविन्दके इस आचरणसे दुःखित और विस्मित होकर यतिराजने सब बातें यथावत् श्रीशैलपूर्णसे निवेदन कीं। श्रीशैलपूर्णने गोविन्दको बुलाकर पूछा—"तुम हमारी शय्यापर सोये थे? तुम जानते हो कि गुरुकी शय्यापर सोनेसे क्या होता है?" गोविन्दने उत्तर दिया—"गुरुकी शय्या पर सोनेवालोंको अनन्तकाल तक नरकवासका असह्य कष्ट भोगना पड़ता है।" श्रीशैलपूर्णने कहा—"यह जानकर भी तुम ऐसा क्यों करते हो?" गोविन्दने उत्तर दिया—"मैं नरकवासकी इच्छा करके ही आपकी शय्यापर सोता हूँ। शय्या कोमल हुई है या नहीं? उसपर सोनेसे आपको सुखसे निद्रा आवेगी या नहीं? इसीको परीक्षा करनेके लिए नरकवासको स्वीकार करके मैं प्रतिदिन आपकी शय्यापर सोता हूँ। मेरे नरकवाससे यदि आपको कुछ सुख प्राप्त हो, तो मैं

उस नरकवासको स्वर्गसे भी अधिक उत्तम समझता हूँ।" यह सुनकर तथा गोविन्दकी गुरुभक्ति देखकर वे सन्तुष्ट हो गये।

एक समय श्रीरामानुजने दूर ही से देखा कि गोविन्द एक साँपके मुँहमें अँगुली देकर उसे खींच रहा है। वह साँप दुःखके मारे व्याकुल हो रहा है। जब स्नान करके गोविन्द यतिराजके समीप आया, तब उन्होंने कहा—"भाई! तुम यह क्या करते थे? एक विषैले साँपके मुँहमें अँगुली देना क्या उन्मत्तोंका काम नहीं है? बड़े भाग्य ही से तुम्हारे रक्तमें विष नहीं पैठा। बालकोंके समान इस प्रकारके काम करनेसे तुमने भी अपनेको विपदमें फँसाया था, और वह निरपराध जीव भी इस समय तक दुःख पा रहा है। तुम्हारे समान सदाशय पुरुषको किसी जीवको दुःख देना उचित नहीं है।" यह सुनकर गोविन्दने कहा—"किसी कटीली वस्तुके खानेसे साँपके गलेमें एक काँटा चुभ गया था, और वह उसी दुःखसे व्याकुल था। इसी कारण मैंने उसके मुखमें अँगुली डालकर काँटे निकाल दिये हैं। अब उसे पहलेका-सा दुःख नहीं है। केवल श्रान्तिके कारण वह निर्जीव-सा पड़ा है। थोड़ी देरमें वह अच्छा हो जायगा। इसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।" यतिराज गोविन्दकी बातें सुन और उसकी जीव-हितैषिता जान बहुत आनन्दित हुए। इस घटनाके पश्चात् गोविन्दपर उनका स्नेह अधिक बढ़ गया।

वर्षके अन्तमें रामायणका पाठ समाप्त होनेपर यतिराजने यथोचित गुरु-दक्षिणा देकर वहाँसे चलनेकी अपनी इच्छा प्रगट की। तब श्रीशैलपूर्णने कहा—"वत्स श्रीरामानुज! तुम्हें यदि किसी प्रकारकी इच्छा हो तो कहो, यदि उसे पूर्ण करनेकी मुझमें शक्ति होगी, तो उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।" यतिराजने कहा—"महानुभाव! आप अपने देवतुल्य शिष्य गोविन्दको मुझे दें।

यही मैं चाहता हूँ।" यह सुनकर श्रीशैलपूर्णने उसी समय अपने प्रिय शिष्य यतिराजको समर्पित कर दिया। गोविन्दको प्राप्त करके उनके आनन्दकी सीमा न रही। वे बहुत शीघ्र वहाँसे घटिकाचलकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ उन्होंने नृसिंहदेवका दर्शन किया। वहाँसे गृध्रसर जाकर और वहाँ देवपूजन, स्नानादि करके वे काञ्चीपुरमे लौट आये। श्रीवरदराज स्वामीके दर्शन करनेके पश्चात् [illegible] षिता कहकर कहा—"महात्मन्! आप ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे गोविन्दकी गुरुभक्ति और जीव-हितैषिता और भी बढ़े।" श्रीकाञ्चीपूर्णने हँसकर कहा—"आपकी इच्छा सर्वदा सफल होगी। आप जिसका मंगल चाहेंगे, उसका सर्वदा मंगल ही होगा।"

गोविन्दके मुखपर मलिनता देखकर श्रीकाञ्चीपूर्णने कहा—"यतिराज! गुरु-सेवाके अभावसे गोविन्दका मुख मलिन हो गया है। आप इसे श्रीशैल-पूर्णके समीप भेज दें।" यह सुनकर श्रीरामानुजने उसी समय गोविन्दको श्रीशैलपूर्णके समीप जानेकी आज्ञा दी। गोविन्द एक सीधे मार्गसे शीघ्र ही गुरुके समीप गया। उसके आनेका संवाद सुनकर श्रीशैलपूर्णने उसकी ओर एक बार देखा तक भी नहीं। मध्याह्न हो गया, सब लोगोंने भोजन भी कर लिया, परन्तु गोविन्दको भोजनके लिए किसीने नहीं कहा। तीसरा पहर भी बीत चला, और गोविन्द बिना भोजन किये बाहर बैठा है। यह देखकर श्रीशैलपूर्णकी स्त्रीने कहा—"गोविन्दके साथ आप बोलें चाहे न बोलें, परन्तु बच्चेको भोजन करनेकी तो आज्ञा दे दें।" श्रीशैलपूर्णने कहा—"जो घोड़ा बिक गया है, उसको दाना-घास देनेके लिये मैं बाध्य नहीं हूँ। नये स्वामीके द्वारा ही अब इसका पालन होना उचित है।" यह सुनकर बिना कुछ खाये ही

गोविन्द वहाँसे लौट आया और काञ्चीपुरमें आकर श्रीरामानुजका पैर पकड़कर कहने लगा—"यतिराज ! आप मुझे अबसे भाई कहकर सम्बोधित न करें। पूर्ण स्वामीसे मैंने सुना है कि आप ही मेरे वर्तमान स्वामी हैं। मुझे आज्ञा दीजिये, क्या करना होगा।" भोजन न करने तथा मार्गकी थकावटसे गोविन्द को अत्यन्त शिथिल देखकर यतिराजने उसे भोजन करनेकी आज्ञा दी। तबसे गोविन्द जिस भक्तिसे श्रीशैलपूर्णकी सेवा करता था, उसी प्रकार गाढ भक्तिसे गुरुकी सेवामें दीक्षित हुआ।

काञ्चीपुरमे तीन रात्रि वास करके यतिराज सशिष्य अष्टसहस्र गाँवमें उपस्थित हुए। वहाँ यज्ञेशकी सेवा ग्रहण करके वे एक रात्रि ठहरे। तदनन्तर गोविन्द और अन्यान्य शिष्योंके साथ श्रीरामानुज श्रीरगम्‌को लौट गये।

एकोनविंश अध्याय

गोविन्दका संन्यास

अपने मामा श्रीशैलपूर्णके आचारसे गोविन्दको कुछ भी कष्ट न हुआ, किन्तु उसने समझा कि श्रीरामानुजके चरणोंमे सर्वतोभावसे समर्पण करना ही उनके ऐसे आचरणका उद्देश्य था। तबसे वह यतिराजकी काय, मन और वचनसे सेवा करने लगा। एक-दो दिन ही में उसने अपने नवीन प्रभुकी समस्त आवश्यकताओंको समझ लिया। इसी भावज्ञताके कारण किसी कामके लिए कहनेके पहले ही वह उस कामको सम्पन्न कर दिया करता था। यह देखकर यतिराजके अन्य शिष्योंको चकित होना पड़ता था। एक बार अन्य शिष्य गोविन्दकी सेवा-निपुणताकी प्रशंसा करने लगे। उसे सुन गोविन्दने कहा—"हाँ, हमारे गुण प्रशसाके योग्य हैं ही।" इससे प्रशसा करनेवालोंने उसे अहकारी समझ श्रीरामानुजसे जाकर कहा। उन्होंने गोविन्दको बुलाकर कहा—"वत्स! तुम्हारे गुणोंकी जिस समय ये प्रशसा करें, उस समय तुम्हें क्या अहकार जनाना चाहिए?" गोविन्दने कहा—"महात्मन्! चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करके इस मोहान्ध जीवनने मानव-शरीर धारण किया है और उसमें भी अनेक जन्मोंके अनन्तर यह वर्तमान जन्म धारण करके भी मोहान्धताके कारण विपथाश्रय करके यह अधःपतित हुआ ही चाहता था। आपकी दया ही इसके उद्धारका कारण है। मुझमें जो-कुछ सद्भाव है, वह

आप ही का है। मैं स्वभावसे ही जड़बुद्धि और हीनप्रकृतिका हूँ। अत मेरे सद्गुणोकी प्रशसासे आपकी ही प्रशसा हुई। इसी कारण मैंने वैसा कहा।" यह सुनकर सभी चकित हो गये।

फिर एक दिन प्रात कृत्य बिना किये ही गोविन्द प्रात कालसे एक वेश्याके द्वारपर बैठा था। यह देखकर उसके अन्यान्य साथियोंने यतिराजसे जाकर उसका आचरण कहा। उन्होंने गोविन्दको पास बुलाकर पूछा—"प्रात कृत्य बिना किये ही तुम वेश्याके द्वारपर क्यों बैठे थे?" गोविन्दने कहा—"वह स्त्री अत्यन्त मधुर स्वरसे आपके गुण गान करती थी। मैं पारायणकी इच्छासे वहीं बैठ समाप्ति-पर्यन्त सुनता रहा। इसी कारण अभी तक प्रात कृत्य नहीं कर पाया।" यह सुन सभी उसकी सरलता और स्वाभाविक भक्तिपर मुग्ध हो गये।

श्रीशैलपूर्णकी भगिनी और गोविन्दकी माता इसी बीच एक दिन श्रीरामानुजके समीप जाकर कहने लगी—"वत्स, गोविन्दकी स्त्री ऋतुमती हुई है। अत उसे अपनी स्त्रीकी धर्मरक्षा करनेकी आज्ञा दो, क्योंकि हमारे कहनेसे वह नहीं जायगा। पहले मैंने उससे कहा था, तो उसने कहा—'यतिराजकी सेवासे एकान्तमे बैठनेका जब मुझे अवसर मिले, तब हमारी स्त्रीको लाओ।' परन्तु बेटा, आज तक मैंने उसके अवकाशका समय नहीं देखा। वह किसी-न-किसी कार्यमे सर्वदा व्यस्त ही रहता है।" यह सुनकर श्रीरामानुजने गोविन्दको अपने पास बुलाकर कहा—"वत्स, तुम तमोगुण छोड़कर अपनी स्त्रीके साथ शयन करो।" गोविन्दने गुरुकी आज्ञा स्वीकार की। उसी रात्रिको वह अपनी स्त्रीके साथ जाकर सोया और भगवत्सम्बन्धी वार्तालाप द्वारा वह रात्रि बिताई। रातकी बातें सुनकर गोविन्दकी माता द्युमिमतीने वे सब बातें श्रीरामानुजसे

जाकर कहीं। यतिराजने गोविन्दको एकान्तमे बुलाकर कहा—"मैंने तुम्हें पत्नीकी धर्मरक्षाके लिये उसके साथ शयन करनेकी आज्ञा दी थी, परन्तु तुमने उस आज्ञाका पालन नहीं किया। इसका कारण क्या है?" गोविन्दने कहा—"महात्मन्! तमोगुण परित्यागकर भार्याके साथ शयन करनेकी आपने आज्ञा दी थी, मैंने उसीके अनुसार बर्ताव किया है। तमोगुणका परित्याग करते ही हृदयस्थ अन्तर्यामी पुरुषका प्रकाश होता है। उस प्रकाशके सामने काम आदि का ठहरना असम्भव है।"

यह सुनकर श्रीरामानुज थोड़ी देर तक तो चुप रहे, तदनन्तर बोले—"गोविन्द! यदि तुम्हारा मन इस प्रकारका है, तो शीघ्र ही सन्यास ग्रहण करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। आश्रममे रहकर आश्रमोचित धर्मोंका पालन भी करना चाहिये, यही शास्त्रकी आज्ञा है। अतएव यदि तुम इन्द्रियोंको अपने वशमें कर सके हो, तो तुम्हारे लिये सन्यास ग्रहण करना ही सर्वोत्तम है।" गोविन्द इससे बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि मैं तैयार हूँ। यतिराजने शीघ्र ही गोविन्दकी माताकी अनुमति लेकर उसे दण्ड-कमण्डल देकर परमहस पद प्रदान किया। नवीन सन्यासीकी दिव्यकान्ति, ज्ञानसमुद्भासित मुखमण्डल, प्रेमाश्रुसे भरे हुए कमलदलके समान उमगे नेत्र और शुद्ध भक्तिमय शरीरको देखकर यतिराजने उसका 'मन्नाथ' नामकरण किया। इस नामसे पहले श्रीरामानुज ही अपने शिष्यों द्वारा सम्बोधित होते थे। उन्होंने अनन्त प्रीतिवश होकर अपना नाम गोविन्दको दिया, परन्तु अहकारशून्य, सत्वमूर्ति, प्रभात-सूर्यके समान कान्तिशील, प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर, सनकादिके समान बालक-स्वभाव प्रेमिक सन्यासी गोविन्द शुद्ध दास्य भक्तिका आदर्श था। वह किस प्रकार दास्य भाव छोड़कर सोहभावको ग्रहण करेगा। उसने किसी भी प्रकार अपने प्रभुके

नामसे अभिहित होना स्वीकार नहीं किया। 'मन्नाथ' इस पदको तामिल भाषा में भाषान्तरित करनेपर होता है 'एम पेरुमान्तर'। ऐसा पद निष्पन्न पूर्वांश और शेषांशको एकत्र करके एम्बार पद बनाया और वही गोविन्दका नाम हुआ।

श्रीरंगम्‌के मठमें श्रीरामानुजके कई हज़ार शिष्य थे, जिनमें ७४ प्रधान शिष्य थे। ये सब बड़े विद्वान्, त्यागी और परम भक्तिमान् थे। समग्र वेद और द्राविड़ प्रबन्धमाला इनको कण्ठस्थ थे। ये सिंहासनाधिपति अथवा पीठाधिपति कहे जाते हैं। पहले दाशरथि, कूरेश, सुन्दरबाहु, शोदैनाम्बि, सौम्य नारायण, यज्ञमूर्ति, गोविन्द आदि इनके प्रधान-प्रधान शिष्योंका नामोल्लेख किया जा चुका है। इन्हीं शिष्योंके साथ श्रीरामानुज भक्ति-तत्व-व्याख्या, शास्त्रालाप द्वारा बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे।

विंशतम अध्याय

श्रीभाष्यकी रचना

एक दिन अपने शिष्योंके निकट श्रीयामुनाचार्यके गुण वर्णन करते समय यतिराजको अपनी पूर्व प्रतिज्ञा स्मरण हो आई। पाठकोंको स्मरण होगा, जिस समय कावेरीके तीरपर चिताके समीप उस महात्माका शव रखा गया था, उस समय वहाँ जाकर श्रीरामानुजने देखा कि उनके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। इसका कारण समझकर उनकी तीन प्रतिज्ञाओंके करनेपर वे मुड़ी हुई तीनों अँगुलियाँ सीधी हो गई थीं। आचार्यने अपनी उन प्रतिज्ञाओंको स्मरण करके शिष्योंसे कहा—"मैं श्रीभाष्यकी रचना करूँगा, क्योंकि यामुनमुनिसे मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, परन्तु आज तक उसमे कुछ भी काम नहीं हुआ। उक्त ग्रन्थको लिखनेके लिये 'बोधायनवृत्ति'की सहायता अपेक्षित होगी। महर्षि बोधायन-निर्मित वृत्तिका मिलना इस देशमें कठिन है। मैंने बहुत ढुँढवाया; परन्तु उसका पता न मिला। सुनता हूँ कि काश्मीरमें वह ग्रन्थ बड़े यत्नसे रखा गया है। कूरेशके साथ मैं आज ही वहाँके लिये यात्रा करूँगा। हे भगवद्भक्तो! आप लोग श्रीभगवान्‌से ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मैं सफल-मनोरथ होकर सकुशल लौट आऊँ।"

इस प्रकार शिष्योंसे विदा होकर श्रीरामानुज कूरेशके साथ तीन महीनेके

पश्चात् शारदापीठमें पहुँचे । वहाँके पण्डितोंके साथ उनका साक्षात्कार तथा अनेक शास्त्रालाप हुआ । यतिराजकी विद्वत्ता, वाग्मिता आदि देखकर वहाँके पण्डित बड़े विस्मित हुए और दुर्लभ अतिथि समझकर उनका सत्कार करने लगे । श्रीरामानुजके 'बोधायनवृत्ति'की बात छेड़नेपर अद्वैतवादी पण्डितोंने सोचा कि इनको इस पुस्तकका देना किसी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि इनका सिद्धान्त महर्षि बोधायनका अनुमोदित है । यदि ये महानुभाव उस पुस्तकको देखेंगे, तो अपने मतको दृढ़ करके अद्वैत मतके प्रबल प्रतिपक्षी हो जायँगे । यह निश्चित करके उन लोगोंने कहा—"महात्मन् ! वह पुस्तक हम लोगोंके पास थी अवश्य, परन्तु अभाग्यवश कीड़ोंने उसे नष्ट कर दिया ।" यह सुनकर यतिराजको बड़ा कष्ट हुआ । वे सोचने लगे—"हमारा समस्त परिश्रम व्यर्थ हुआ ।" इसी प्रकार सोचते-सोचते दु खित हृदय हो वे सो गये । उस समय भगवती सरस्वती उस पुस्तकको लेकर स्वय आई और उसे यतिराजको देकर बोलीं—"वत्स ! तुम इस पुस्तकको लेकर शीघ्र ही यहाँसे अपने देशमे चले जाओ, क्योंकि यहाँके पण्डितोंको यह मालूम हो जानेपर तुम्हारा यहाँसे जाना कठिन हो जायगा ।" यह कहकर सरस्वती वहाँसे अन्तर्धान हुई । श्रीरामानुज ने भगवती शारदाका दर्शन, अनुग्रह और आज्ञा प्राप्तकर अपनेको कृतकृत्य समझा और शीघ्र ही पण्डितमण्डलीसे बिदा होकर वे दक्षिण-देशकी ओर चल दिये ।

इसके कतिपय दिनों पश्चात् शारदापीठके पण्डित पुस्तकालयका संस्कार करनेकी इच्छासे समस्त पुस्तकें बाहर निकालने लगे । पुस्तकोंमें कीड़े तो नहीं लगे, इसलिये वे विशेष सावधानीसे पुस्तकें देखने लगे । पुस्तकें देखते-देखते 'बोधायनवृत्ति'को न देख, वे बड़े चिन्तित हुए और उन लोगोंने निश्चय

किया कि दक्षिणके वे दोनों पण्डित उस पुस्तकको चुराकर ले गये हैं। उनमें से कतिपय बलवान् मनुष्य उनका पीछा करनेके लिये तैयार हुए और दिन-रात बराबर चलकर एक महीनेके पश्चात् वे श्रीरामानुजके समीप पहुँचे। जब इन लोगोंने पूछकर जान लिया कि इनके पास 'बोधायनवृत्ति' नामक पुस्तक है, तब उन शूद्रोचित मनुष्योंने बलपूर्वक पुस्तक छीन ली और वे चलते बने। इससे श्रीरामानुजको बड़ा कष्ट हुआ। गुरुकी ऐसी अवस्था देखकर कूरेशने कहा—"आश्रितवत्सल! आप दुःख क्यों करते हैं? काश्मीरसे चलनेके समय से प्रत्येक रात्रिको आपके सो जानेपर मैं वृत्तिका पाठ किया करता था। ऐसा करनेसे वह समस्त पुस्तक मुझे कण्ठस्थ हो गई है। मैं यहाँ ही उसे लिखे देता हूँ।" यह सुनकर श्रीरामानुज बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दोन्मत्त होकर तथा उनको आलिंगन करके लगे—"बेटा! तुम चिरजीवी होओ। आज हमारे नष्ट रत्नका उद्धार करके तुमने हमें सदाके लिये ऋणी बना लिया।" पुस्तक लिखी जानेपर वे शीघ्र ही वहाँसे चलकर श्रीरंगम् पहुँचे। यतिराजने शिष्योंसे मार्गका समाचार कहते हुए कहा—"हे भागवत्तोत्तमो! तुम लोगोंकी भक्तिके बलसे और कूरेशकी असाधारण मेधाशक्तिके प्रभावसे 'बोधायनवृत्ति' नामक पुस्तक प्राप्त हो गई। जो तार्किक लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्योंके अर्थज्ञानको ही मुक्ति-प्राप्तिका एकमात्र उपाय बतलाते हैं, अथवा ज्ञान और कर्मका समुच्चय माननेवाले महावाक्योंके अर्थज्ञानके साथ यज्ञ, दान, तप, कर्म आदिकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं, आज मैं उन सबका मत खण्डन करके ध्यान, उपासना, भक्तिके द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करना वेद-वेदान्तका अभिप्राय है, यह प्रतिपादन करके श्रीभाष्यकी रचना करूँगा। इस कार्यको निर्विघ्न समाप्त करनेके लिये आप लोग भगवान्से प्रार्थना करें। बेटा कूरेश! तुम

हमारे लेखक बनकर काम करो। परन्तु जहाँ तुम्हे भाष्यकी कोई युक्ति समीचीन न मालूम पड़े, वहाँ लिखना बन्द कर देना। इस प्रकार युक्तिको पुनः सोचनेका हमें अवकाश मिल जायगा। यदि वह युक्ति भ्रमात्मक होगी, तो उसका सशोधन कर लिया जायगा।"

इस प्रकार श्रीभाष्यका लिखा जाना प्रारम्भ हुआ। समस्त भाष्यको लिखनेमे कूरेशको एक बार लिखना बन्द करना पड़ा था। एक बार यतिराजने भगवच्छेषत्व-रहित ज्ञातृत्व मात्रयुक्त निर्णय करते हुए जीवका स्वरूप कहा। यह सुनते ही कूरेशने लिखना बन्द कर दिया। बार-बार लिखनेके लिये गुरुके आज्ञा देते रहनेपर भी कूरेशने उनकी आज्ञाका पालन नही किया। इससे कुछ क्रुद्ध होकर यतिराजने कहा—"कूरेश! यदि तुमको ऐसा करना हो, तो श्रीभाष्य तुम्हीं लिखो।" परन्तु यह कहनेके बाद ही उनके चित्तमे आया—जीव स्वतन्त्र नहीं हो सकता है। वह सर्वतोभावसे ईश्वरके अधीन है। अतएव ईश्वरको अशी वा शेषी और जीवको अश वा शेष कहते हैं। इस प्रकार स्थिर करके जीवको भगवच्छेष और ज्ञाता कहनेपर कूरेशने पुनः लिखना आरम्भ किया। इस प्रकार श्रीभाष्यकी रचना समाप्त हुई।

इसके अनन्तर यतिराजने 'वेदान्तदीप', 'वेदान्तसार' 'वेदार्थसग्रह' और 'गीताभाष्य'—ये चार ग्रन्थ बनाये। श्रीभाष्य बनाकर उन्होंने श्रीयामुनमुनि की दूसरी अभिलाषा पूरी की। 'द्राविड़ प्रबन्धमाला'को 'द्राविड़ वेद'के नामसे प्रसिद्धकर और उसे वेदोंके समान आसनपर बैठाकर यतिराजने उनकी पहली अभिलाषा पूरी की।

एकविंश अध्याय

दिग्विजय

श्रीभाष्य प्रभृति ग्रन्थोंका लिखना समाप्त करके यतिराजने चौहत्तर सिंहासनाधिपतियों तथा अनान्य असख्य शिष्यों-सहित दिग्विजयके लिये यात्रा की। वे पहले चोलमण्डलकी राजधानीमे गये । वहाँसे वे कुम्भकोणम् गये। कुम्भकोणम्के पण्डितोको शास्त्रार्थमें परास्त करके उन्हें अपने मतमें दीक्षित करते हुए श्रीरामानुज पाण्ड्य-देशकी राजधानी मदुरा नगरीमें उपस्थित हुए। यह नगर द्राविड़ कवियोंका दुर्भेद्य क़िला है। 'द्राविड़ प्रबन्धमाला'की व्याख्या करके उन्होंने उन पण्डितोंको भी अपने मतमें प्रविष्ट किया। यहाँसे शठारिकी जन्म-भूमि कुरुकापुरीका दर्शन करनेके लिये वे गये। वहाँके देवमन्दिरमे शठारिकी मूर्तिका दर्शन करके यतिराजने अपनेको कृतकृत्य समझा, और उनकी स्तुति करके वे विशेष आनन्दित हुए। वहाँसे करङ्ग नगरीके विष्णुका दर्शन करके उनके आनन्दकी सीमा न रही। कहते हैं, श्रीरामानुजकी अतुलनीय लोक-सग्रह और लोक-रक्षण-क्षमताको देखकर विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन लीलामय भगवान्ने लोलापरतन्त्र होकर यतिराजका शिष्यत्व ग्रहण किया। गुरुने उनका नाम 'वैष्णवनाम्बि' रखा। इससे विष्णुने अपनेको बड़ा कृतकृत्य समझा।

वहाँसे वे केरल (मलाबार) देशकी ओर गये और यहाँकी राजधानी

तिरुअनन्तपुरम् अथवा त्रिवेन्द्रम्मे जाकर अनन्तशयन पद्मनाभका दर्शन करके वे भक्ति-गद्गद हो गये। वहाँसे उन्होंने उत्तर ओरकी यात्रा की। वे क्रमश द्वारावती, मथुरा, वृन्दावन, शालग्राम, साकेत, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य, पुष्कर आदिका दर्शन करके काश्मीरस्थ शारदापीठमें पहुँचे। कहा गया है कि शारदा देवी उनसे 'कप्यास पुण्डरीकाक्षम्'की व्याख्या सुनकर बहुत प्रसन्न हुई तथा उन्होंने यतिराजको 'भाष्यकार'की उपाधि दी।

काश्मीरी पण्डितोंने श्रीरामानुजसे खूब शास्त्रार्थ किया। अन्तमें वे उनके प्राणनाश करनेके लिए अभिचार भी करने लगे, परन्तु उस अभिचारका फल उल्टा हुआ। अभिचार करनेवालों ही को अपने प्राण गँवाने पड़े। तदनन्तर काश्मीरके राजा श्रीरामानुजके पैरोंपर गिरकर कृपाभिक्षा माँगने लगे। श्रीरामानुजने दयासे उनको सुस्थ किया। राजा और पण्डित उनके शिष्य हो गये। यहींपर श्रीरामानुजने भगवान् हयग्रीवकी मूर्तिका दर्शनकर अपनेको कृतार्थ किया। शारदा देवीसे आज्ञा पाकर यतिराजने काशीके लिए यात्रा की। वहाँ कुछ दिनों तक वास करके और वहाँके दार्शनिक पण्डितोंको अपने मतमे दीक्षित करके अन्तमें श्रीरामानुजने दक्षिणकी ओर जाना प्रारम्भ किया।

कतिपय दिनोके पश्चात् श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें जाकर उन्होंने विश्राम किया और अपने सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिये वहाँ एक मठ बनवाया। वहाँके पण्डितोंने परास्त होनेके डरसे उनकी इच्छा रहनेपर भी उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया। यह देख श्रीरामानुज अपने मतका वहाँ प्रचार करनेके लिये विशेष उत्कण्ठित हुए। उन्होने श्रीजगन्नाथ देवकी पूजा पञ्चरात्र-विधानके अनुसार करनेके लिये पुजारियोंसे अनुरोध किया। उन लोगोंने स्मर्तमतको छोड़ कर इस वैदिक मतको ग्रहण करनेकी अनिच्छा प्रकट की। तब श्रीरामानुजने

राजासे विचार करानेकी प्रार्थना की । यह सुनकर पूजकगण श्रीजगन्नाथकी शरण गये । उसी रात्रीको श्रीजगन्नाथने श्रीरामानुजको वहाँसे सौ योजन दूर रखवा दिया ।

उठनेपर वे सहसा यह न जान सके कि वे किस देशमें चले आये हैं । उनका एक शिष्य भी वहाँ नहीं है । इसे देवताकी माया समझकर उन्होंने प्रात कृत्य सम्पादन किया और कूर्मदेवके मन्दिरमें जाकर बड़ी भक्तिसे भगवान् की पूजा की । उन्हें मालूम हो गया कि मैं जगन्नाथकी मायासे पुरुषोत्तमक्षेत्रसे सौ योजन दूर कूर्मक्षेत्रमें आ गया हूँ । कूर्म भगवान्की आज्ञासे शिष्योंके आने तक श्रीरामानुजने वहीं रहना निश्चित किया । कईएक दिनोंके पश्चात् वे शिष्योंके साथ पुन मिलित हुए और वहाँसे उनके साथ सिंहाचलको गये । वहाँ कुछ दिनों ठहरकर अहोवलके मन्दिरमे उपस्थित हुए । वहाँसे वे वेङ्कटाचल गये । उसी समय वहाँ शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंमें भगवान्के विग्रहको लेकर शास्त्रार्थ हो रहा था । श्रीरामानुजने अपनी अलौकिक शक्तिके द्वारा यह दरसा दिया कि यह विष्णुविग्रहके अतिरिक्त अन्य विग्रह हो ही नहीं सकता । इससे वैष्णव और शैव दोनों सम्प्रदायके लोग सन्तुष्ट हुए । वहाँ कुछ दिनों तक रहकर श्रीरामानुज अपने समस्त शिष्योंके साथ पुन काञ्चीपुरीमें लौट आये । वहाँ श्रीवरदराज भगवान्का दर्शन करके उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा । वहाँसे मदुरान्तकका दर्शन करते हुए वे श्रीयामुनमुनीके पितामह नाथमुनीकी जन्मभूमि वीरनारायणपुरमें गये । उन महामुनिके महत् योगाभ्यास-स्थानको देखकर उन्होंने प्रणाम किया । वहाँसे वे श्रीरंगम् आये, और श्रीरंगनाथ स्वामीका दर्शन करके उन्होंने अपनेको अत्यन्त भाग्यवान् समझा ।

—**—

द्वाविंश अध्याय

कूरेश

उत्तमपूर्ण नामक श्रीरंगनाथके एक सेवकने 'लक्ष्मीकाव्य' नामक एक काव्य बनाया था। उसमें उसने कूरेशकी जीवनी जिस प्रकार लिखी है, वही यहाँपर दी जाती है। कूरेश वात्स्य गोत्रोत्पन्न एक धनाढ्य ब्राह्मण थे। काञ्चीपुरके दो कोस पश्चिम कूरआग्रहार नामक स्थानमें वे रहते थे। वे उस स्थानके स्वामी थे, इस कारण उनका नाम कूरनाथ या कूरेश था। आण्डाल नामकी एक योग्य स्त्रीको उन्होंने ब्याहा था। वे अपने धनको दीन-दरिद्रोंकी सहायतामें खर्च किया करते थे। बाल्यावस्थासे ही श्रीरामानुजमें उनकी भक्ति थी। उनके सन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् कूरेश अपनी स्त्रीके साथ उनके शिष्य हुए और प्राय सर्वदा उन्हींके समीप रहने लगे। उनकी विद्वत्ताकी सीमा नहीं थी। उनकी स्मृतिशक्तिका परिचय हम लोगोंने पहले ही पाया है। वे एक बार जो सुनते या पढ़ते, वह उन्हें बहुत दिनों तक स्मरण रहता था। उन्हींकी सहायतासे श्रीरामानुज स्वामीने महापण्डित यादवप्रकाशको शास्त्रार्थमें परास्त किया था।

उनकी बड़ी हवेलीमें आधी रात तक लाओ, दो, खाओ—ये ही शब्द होते रहते थे। तदनन्तर उनका लौहमय बड़ा किवाड़ा पुनः प्रात काल खुलनेके

लिये बन्द होता था। काञ्चीपुर छोड़कर श्रीरामानुजके श्रीरगम् जानेपर कूरेशकी समस्त ऐश्वर्योंसे अरुचि, हो गई थी।

कहा है--श्रीवरदराजकी स्त्री जगन्माता लक्ष्मीने एक रात्रिको कूरेशके द्वार बन्द होनेकी ध्वनि सुनी। श्रीलक्ष्मीके उक्त ध्वनि होनेका कारण पूछनेपर श्रीकाञ्चीपूर्णने कूरेशके दरिद्र-पालन आदिकी सभी बातें विस्तारपूर्वक वर्णन करके कहा----"माता! प्रात कालसे लेकर अभी तक दीन-दरिद्रो, लँगड़ों और कुबड़ों की सेवा होती है। सब काम सम्पन्न करके थोड़ी देर विश्राम करनेके लिये सेवकोंने धर्मशालाका द्वार बन्द किया है। उसी द्वारके बन्द करनेके समय प्रत्येक रात्रिको इसी प्रकारका शब्द होता है।" यह सुनकर श्रीलक्ष्मीदेवी चकित हुई और उन्होंने कूरेशको देखनेकी इच्छासे कहा---"बेटा! उस महात्माको कल प्रात काल हमारे पास लाओ, मैं उसका दर्शन करूँगी।" श्रीकाञ्चीपूर्णने प्रात-काल कूरेशके समीप आकर माता श्रीलक्ष्मीकी बातें उनसे कहीं। कूरेशने कहा—"महात्मन्!

क्वाह कृतघ्न· पापिष्ठो दुर्मना· परवचक·।
क्वासौ लक्ष्मी जगन्माता ब्रह्मरुद्रादि वन्दिता॥

—कहाँ हमारे समान कृतघ्न, दुष्ट, पापी और परवचक और कहाँ ब्रह्मा, रुद्र आदि द्वारा वन्दित जगन्माता श्रीलक्ष्मी! महापातकसे उत्पन्न, महाव्याधिसे पीड़ित अधमको देवालयमें प्रवेशका अधिकार ही कहाँ है? मैं उससे भी अधम हूँ। विषयविष्ठा मेरे हृदयको कलुषित किये हुए है। मुझे मालूम नहीं, मैं इस जन्ममे श्रीलक्ष्मीके दर्शनका अधिकारी हो सकूँगा या नहीं।" यह कहकर कूरेशने अश्रु-विसर्जन करते हुए शरीरसे समस्त आभूषणोंको निकालकर फेंक दिया और पीताम्बरके बदले पुराने वस्त्र पहनकर तथा श्रीकाञ्चीपूर्णसे

यह कहकर अपने मकानसे चले—"महाशय, मैं जगन्माताकी आज्ञाका लंघन नहीं कर सकता। मैं उनके चरणोंके दर्शन करनेके लिये चलता हूँ। विषय-विष्ठा-युक्त यह देह और मन गुरुचरणारविन्द-रूप अमृत-सरोवरमे बिना स्नान किये शुद्ध नहीं हो सकते। अतएव मैं स्नान करनेके लिये चलता हूँ। मालूम नहीं, मैं कितने दिनोंमें इस पापसे मुक्त हो सकूँगा। आपके समान महानुभावोंके आशीर्वादसे सम्भव है, इसी जन्ममें जगन्माताके चरणोंका दर्शन हो जायगा।"

पतिको जाते देख उनकी स्त्री आण्डाल भी चली। स्वामीको जल पिलानेके लिये उसने अपने साथ एक सुवर्ण-पात्र ले लिया था। थोड़ी दूर जानेपर वे वनमें ठहरे। सघन वनमें आण्डालको कुछ भय मालूम हुआ। उसने अपने पतिसे कहा—"प्रभो! यहाँ तो कोई डर नहीं है?" कूरेशने उत्तर दिया—"धनिकोंको भय होता है। तुम्हारे पास यदि धन न हो, तो किसी प्रकारका भय नहीं है। चली आओ।" यह सुनकर आण्डालने उस सुवर्ण-पात्रको दूर फेंक दिया। दूसरे दिन वे श्रीरंगम् पहुँचे। कूरेश-दम्पतिके आनेका संवाद सुनकर श्रीरामानुज परम स्नेहसे उन्हें अपने मठमें ले आये। स्नान, भोजन आदिके द्वारा मार्गकी थकावटके दूर होनेपर यतिराजने उन लोगोंको रहनेके लिये एक दूसरा मकान निश्चित कर दिया।

कूरेश भिक्षा-वृत्ति द्वारा अपना निर्वाह करने लगे। वे सर्वदा ही गुरु-उपदिष्ट मन्त्ररत्नका स्मरण, भगवान्‌के नामका कीर्तन, सत् शास्त्रोंकी आलोचना और गुरु-चरण-दर्शन आदि अनेक सदुपायोंसे कालक्षेप करते हुए अपनेको कृतार्थ समझने लगे। आण्डाल पतिकी सेवामे नियुक्त रहकर तथा पतिका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहणकर बड़े आनन्दसे अपने दिन व्यतीत करती थी। वह अपने अतुल

ऐश्वर्यकी बात एक बार ही भूल गई। कूरेशके सुख ही से वह अपनेको सुखी समझती थी। एक दिन दोपहर तक अविरत मूसलधार वृष्टि होती रही, अतएव कूरेश भिक्षाटनके लिये बाहर नहीं गये। सुतरां कूरेश और उनकी स्त्रीको बिना खाये ही वह दिन बिताना पड़ा। परन्तु उन्हें अपने भोजनकी बात एक बार भी स्मरण न हुई। पति-सेवा-परायणा आण्डालने अपने पतिको भूखा देखकर मन ही मन यह विषय श्रीरंगनाथस्वामीको जनाया। इसके थोड़ी देरके बाद एक पुजारी अनेक प्रकारके बहुमूल्य प्रसाद वहाँ रखकर चला गया। कूरेश यह देख कर विस्मित हुए और उन्होंने स्त्रीसे पूछा—"तुमने मन-ही-मन श्रीरंगनाथ-स्वामीसे किसी बातकी प्रार्थना की थी?" रोती हुई आण्डालने सभी बातें कहीं। कूरेशने कहा—"जो किया है, उसके लिए तो अब कोई उपाय नहीं है; परन्तु अब स्मरण रहे, ऐसा कभी न होने पावे।" ऐसा कहकर उन्होंने महाप्रसादको प्रणाम करके मस्तकपर चढ़ाया और स्त्रीके साथ स्वयं भी महाप्रसाद ग्रहण किया। तदन्तर शठारिसूक्तका पाठ करते-करते उन्होंने रात्रि व्यतीत की।

कहा जाता है कि उस प्रसादके ग्रहण करनेके दस मास पश्चात् आण्डालने ९८३ शाकेमें शुभकृत् नामक वर्षके वैशाख महीनेकी पूर्णिमाको अनुराधा नक्षत्र में एक साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये। यह सुनकर श्रीरामानुज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी समय नवजात शिष्योंका जातकर्म करनेके लिये गोविन्दको भेजा। गोविन्दने जातकर्म करके उनको द्वयमन्त्र सुनाकर नवजात देह-मनको शुद्ध किया। यतिराजने स्नेहपरवश होकर बच्चोंको राक्षस, भूत, पिशाच आदिसे रक्षा करनेकी इच्छासे विष्णुके पञ्चास्त्र* सुवर्णके बनवाकर बच्चोंको रखनेके लिये दिये। इस प्रकार रक्षा पाकर बालक शनैः-शनैः बढ़ने लगे। ग्यारहवें दिन

* पाञ्चजन्य, सुदर्शन, कौमोदकी, नन्दक, शार्ङ्ग—ये पाँच अस्त्र हैं।

उनका नामकरण-सस्कार हुआ। यतिराजने बड़ेका नाम पराशरभट्ट और कनिष्ठ का नाम श्रीराम रखा। उसी समय गोविन्दके छोटे भाई बालगोविन्दके पुत्रका नामकरण करनेका भी समय उपस्थित हुआ। श्रीरामानुजने उसका पराङ्कुशपूर्ण नाम रखा। इस प्रकार यतिराजने अपनी तीसरी प्रतीज्ञा पूर्ण की।

पराशर बाल्यावस्था ही से अपनी अलौकिक शक्तिका परिचय देने लगा। जब वह चार वर्षका था, तब सर्वज्ञभट्ट नामक एक दिग्विजयी पण्डित अनेक शिष्योंके साथ तुरही बजवाकर अपनी कीर्त्ति प्रकाशित करता हुआ उसी मार्गसे बड़ी धूमधामसे जा रहा था। वहाँ अन्य बालकोंके साथ पराशर भी खेल रहा था। उसने तुरही बजानेवालेसे सुना—"जगद्विख्यात सर्वज्ञभट्ट अपने शिष्योंके साथ आते हैं। जो कोई उनके साथ शास्त्रार्थ करना चाहे, अथवा उनका शिष्य होनेकी इच्छा करे, वह शीघ्र ही उनके चरणोंमें उपस्थित हो।" यह सुनकर बालक हँसता-हँसता एक अञ्जुलि धूल लेकर सर्वज्ञके सामने गया और कहने लगा—"कहिए सर्वज्ञजी महाराज, हमारी अञ्जुलिमे कितनी धूलि है? जब आप सर्वज्ञ हैं, तब आपको सभी जानना चाहिए।" वह पण्डित सहसा धूलिधूसरकाय बालकके प्रश्नको सुनकर चकित हो गया और अपने सर्वज्ञत्वाभिमानको धिक्कारता हुआ उस बालकको गोदीमें उठाकर चुम्बन करके कहने लगा—"बेटा! तुम हमारे गुरु हो, तुम्हारे प्रश्नसे हमें ज्ञान हुआ है।"

श्रीरगनाथस्वामीका प्रसाद-भोजन करनेसे इनका जन्म हुआ है, अत पराशर और श्रीरामको उन्हींका पुत्र लोग जानते थे। उपनयनके अनन्तर उपनिषद् पढनेके समय गोविन्द जब उनको भगवानके 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' गुणद्वयका उपदेश करते थे, उस समय बालक पराशरने पूछा—"एकमे दो विरुद्ध धर्म कैसे रह सकते हैं?" गोविन्द इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर न दे सकनेके कारण चकित हुए थे।

त्रयोविंश अध्याय

धनुर्दास

आज श्रीरङ्गमें गरुड़-महोत्सव है। अनेक स्थानोंसे नर-नारियोंका समुदाय भगवानके दर्शन करनेकी इच्छासे आ रहा है। सभी विशाल मन्दिरके द्वारपर गरुड़पर चढे हुए श्रीरङ्गनाथस्वामीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भेरी और काहलीकी तुमुल ध्वनि शेषशायी नारायणकी जयघोषणा दिशा-विदिशाओंमें कर रही है। सभी उत्कण्ठित होकर मन्दिरके भीतरके बड़े आँगनकी ओर देख रहे हैं। इसी समय श्रेणिबद्ध ब्राह्मणोंने परम पवित्र द्राविड़ वेदका उच्च स्वरसे गान प्रारम्भ किया। इस ध्वनिके प्रारम्भ होते ही समस्त कोलाहल दूर हो गया। वेदपाठी ब्राह्मण भीतरके आँगनसे धीरे-धीरे मन्दिरके द्वारकी ओर बढे। दो बाँसोमें मढा हुआ, शख-चक्र और तिलकसे अकित, एक लाल वस्त्र उनके आगे-आगे चलता था। वह मुखसे निकली हुई जाह्नवि-ध्वनिके समान परम पवित्र वेदध्वनि समस्त नर-नारियोंके सन्ताप हरण करती हुई वेद-गगामें स्नान कराकर उन्हें देवतुल्य कर देती थी। उस समय पृथिवी स्वर्गके समान आनन्दमय हो गई।

मन्दिरके द्वारसे आगे बढकर द्राविड़ वेदपाठीगण राजमार्गपर उपस्थित हुए। उनके पीछे बहुत बड़े-बड़े हाथी, जिनके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र सुशोभित हो रहे थे

और जो अनेक प्रकारके साजोंसे सुसज्जित थे, झूमते-झूमते राजमार्गपर आये। उनके पीछे लम्बे सींगवाले, बड़े डील-डौलवाले, मोटे एव सजे हुए बैल रक्षकोंसे परिचालित होकर आये। तदनन्तर सजे-सजाये घोड़े, जिनपर नगाड़े बज रहे थे, आये। उनके पश्चात् असख्य हरिनाम-कीर्तन करनेवाले भक्त अनेक प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंकी सहायतासे मधुर स्वरसे गान करते तथा दर्शकोंको मुग्ध करते हुए चले। इनके राजपथपर चले जानेपर गरुड़पर चढ़े तथा देवदासियोंसे स्तुत लक्ष्मीके साथ अर्चकवेष्टित श्रीमन्नारायण गरुड़-वाहनपर निकले। गरुड़-वाहनको अनेक भक्त बड़े उत्साहसे उठा रहे थे। उस समय आनन्दित होकर नर-नारीगण एक ही समय करतल-ध्वनिसे दिशाओंको कम्पित करने लगे। द्वारके सामनेवाले मण्डपमे भगवानने थोड़ी देर तक विश्राम किया। उनके पश्चात् श्रेणिबद्ध अनेक ब्राह्मण वेदका पाठ करते हुए धीरे-धीरे चलने लगे। नारायणके मण्डपमे बैठनेपर सभी खड़े हुए। चारों ओरसे भक्तगण अनेक प्रकारकी सामग्रीसे भगवानकी पूजा करने लगे। कोई-कोई नारियलका फल तोड़-तोड़कर भगवानको भेंट करने लगे, कोई केलोंके गुच्छे भगवानको निवेदन करने लगा, कोई-कोई कपूरसे भगवानकी आरती करने लगे। इसी प्रकार कुछ काल बीतनेपर भगवानने मण्डप त्याग दिया और शख चक्र तथा तिलकसे अङ्कित लाल वस्त्रसे लेकर साम-यजुर्वेद-पाठी तकका जनसमूह बड़ी नदीकी धाराके समान चला। विशाल राजपथमें तिल रखनेको भी स्थान नहीं था। सभीकी दृष्टि लक्ष्मी-नारायणकी ओर थी।

अपने दल-बलके साथ श्रीरङ्गनाथस्वामीके राजमार्गसे बाहर होकर धीरे-धीरे आगे बढ़नेपर अटारियोंसे पुरनारियाँ कुसुम, कर्पूर, फल, ताम्बूल आदि समन्वित नैवेद्य भगवानको अर्पण करनेके लिये पुजारियोंको देने लगीं।

वे भी भगवानको अर्पण करके भक्तिमती पुरनारियोंको प्रसाद देने लगे और भगवत्पादुका-चिन्हित मुकुटको उनके नवे हुए मस्तकसे स्पर्श कराने लगे। उस जनसमूहमे ऐसा कोई नहीं था, जो हाथ जोड़कर भक्ति-युक्त हृदयसे भगवानके चरणोंको एक टकसे न निरख रहा हो। क्योंकि उस समय ऐसा ही भक्ति बढ़ानेवाला एक अलौकिक भाव उत्पन्न हुआ था, जो अभक्तोंके हृदयमें भी भक्तिका सञ्चार करता था। चारों ओर यही भाव दीख पड़ता था, परन्तु एक स्थानपर ठीक इसके विपरीत भाव देखा जाता था। रघुवशियोंके समान 'व्यूढोरस्का वृषस्कन्ध· शालप्राशुर्महानुज' परम बलवान् एक युवक अन्य भावमें विभोर होकर उसी जनसमूहके साथ चल रहा है। उसके बाएँ हाथमे एक बड़ा छत्ता था, परन्तु उससे उसकी धूप नहीं निवारित होती थी। उसीके सामने एक परम सुन्दरी विशाल नेत्रा युवती खिली कमलिनीके समान चल रही थी। कमलिनीनायक सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उसकी रक्षा करनेके लिये ही उस युवकने छत्ता लिया था। उस पुरुषके दाहिने हाथमे एक पङ्खा था। वह युवक बीच-बीचमें पङ्खा हिलाकर युवतीका पसीना दूर करता था। उसका मन-प्राण और दृष्टि उसी स्त्रीकी ओर लगे थे। वह जगत्को एक बार ही भूल गया। ऐसा करनेसे लोग क्या कहेंगे, उसकी उसे बिलकुल चिन्ता नहीं थी। साथ चलनेवाले यद्यपि इनको देखकर कानाफूसी करते थे, तथापि उधर इनका ध्यान ही न था। कमलका मधु पीनेवाला भ्रमर जिस प्रकार आनन्द-समुद्रमें डूबकर जगत्को एक बार ही भूल जाता है, उसी प्रकार युवतीकी सुन्दरतापर लुब्ध इस युवककी भी दशा थी। अत लज्जा, घृणा और भय किसको कहते हैं, यह उसे मालूम ही नहीं होता था।

स्नान करनेके अनन्तर कावेरी-तीरसे आते हुए शिष्योंके साथ और

दाशरथिके कन्धेपर बाँया हाथ रखकर पतितपावन भगवान श्रीरामानुजाचार्य, भगवानका दर्शन, पूजन आदि करके अपने मठकी ओर आ रहे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि इस नवीन दृश्यकी ओर गई। उन्होंने एक शिष्यसे कहा—"बेटा, तुम इस निर्लज्ज मनुष्यको हमारे पास लिवा लाओ।" शिष्य उसके पास आकर जब बार-बार उसे पुकारने लगा, तब उसे चैतन्य हुआ। निद्रासे उठे हुएके समान कुछ घबराकर उसने ब्राह्मणकी ओर देखा और हाथ जोड़कर कहा—'महाशय! दासको क्या आज्ञा देते हैं?' ब्राह्मणने कहा—"पास ही यतिराज खड़े हैं, वे तुम्हारे साथ कुछ बातचीत करना चाहते हैं। थोड़ी देर के लिये उनके पास चलो।" युवक यतिराजका नाम सुनकर और अपनी स्त्रीसे वहाँ जानेके लिये आज्ञा लेकर ब्राह्मणके साथ चला और शीघ्र ही यतिराजके समीप पहुँच गया। वहाँ जाकर यतिराजको साष्टाङ्ग प्रणाम करके वह चुपचाप खड़ा हो गया। यतिराजने उसे देखकर पूछा—"तुम इस युवतीमें कौन-सा ऐसा अमृत पाये हुए हो, जिससे घृणा, लज्जा, भय आदि छोड़कर तुम महाकामुकके समान व्यवहार करके इस जनसमूहमे अपनी हँसी करा रहे हो?" युवकने उत्तर दिया—"महात्मन्! पृथिवीमें जितनी सुन्दर वस्तु वर्तमान हैं, उन सबकी अपेक्षा इस सुन्दरीके नेत्र परम सुन्दर हैं। उन नेत्रोंको देखते ही मैं उन्मत्तके समान हो जाता हूँ। फिर मेरी आँखें मेरे वशमें नहीं रह जातीं।" यतिराजके नाम-धाम पूछनेपर वह युवक कहने लगा—"निचुल नगरमें मैं रहता हूँ। मेरा नाम धनुर्दास है। मैं मल्लविद्यामें निपुण हूँ। मेरी स्त्रीका नाम हेमाम्बा है।" यह सुन यतिराजने कहा—"धनुर्दास! यदि मैं उस स्त्रीके नेत्रोंसे भी अधिक सुन्दर नेत्र तुम्हें दिखाऊँ, तो तुम इस स्त्रीको प्यार करना छोड़कर उसे प्यार करोगे या नहीं?" युवकने उत्तर

दिया—"महात्मन्! यदि मेरी स्त्रीकी आँखोंकी अपेक्षा और किसीकी आँखें सुन्दर हो सकती हैं, तो निश्चय ही मैं उसे छोड़कर उसीकी सेवा करूँगा।" श्रीरामानुजने कहा—"यदि ऐसा है, तो आज सन्ध्याको हमारे पास आना। मैं तुम्हें ऐसे सुन्दर नेत्र दिखाऊँगा, जिनकी तुलना इस त्रिभुवनमें हो ही नहीं सकती।" धनुर्दास "जो आज्ञा" कहकर अपनी स्त्रीके साथ जाकर पहलेके समान चलने लगा।

सन्ध्या हो गई है। श्रीरामानुजाचार्य धनुर्दासको साथ लिए श्रीरङ्गनाथस्वामीके मन्दिरके बड़े-बड़े द्वारोंको एक-एक करके अतिक्रमण कर रहे हैं। इस प्रकार पाँच द्वार डाँक जानेपर वे प्रधान मूर्त्तिके समीप गए। पुजारियोंने यतिराजको देखकर बड़े आदरसे अभ्यर्थना की। तदनन्तर कपूर लेकर वे भवभयहारी कमलनयन भगवानकी आरती करने लगे। उसी कपूरके प्रकाशमें श्रीभगवानके कमलदल-सदृश विशाल लोचन भक्तोंके हृदयमें परमानन्द बढ़ाने लगे। यतिराजका समीपस्थ धनुर्दास उनकी मधुरता और मनोहरता देखकर आँख नहीं हटा सका। वह प्रेमाश्रुकी धारा बहाता हुआ असीम आनन्दका अनुभव करने लगा। हेमाम्बाकी नयन-सुन्दरता सूर्योदयके सामने तारेके सौन्दर्यके समान उसके हृदयसे दूर हो गई। इस प्रकार थोड़ी देर तक आनन्दसागरमे रहनेके अनन्तर धनुर्दासको बाह्य ज्ञान हुआ। तब पासमें यतिराजको खड़ा देखकर वह पैरोंपर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर कहने लगा—"महानुभाव! अत्यन्त कृपावश आज आपने कामपरायण इस पशुको देवदुर्लभ आनन्दका भागी बनाया है। इसके लिए मैं आपका खरीदा दास हूँ। मैं आज तक महासागरका अनादर करके कूपमण्डूकके समान कूप ही का आदर करता था। सर्वसौन्दर्य और वीर्यका आकार, भगवान सूर्यका तिरस्कार करके

निशाचर उलूकके समान इतने दिनों तक मैं खद्योत ही के रूपपर मुग्ध था। अहो, मेरे समान इस जगतमें हीनबुद्धि दूसरा कौन है! मेरे समान अत्यन्त मूर्खका तमोविनाश आपके समान महापुरुष ही के द्वारा हो सकता है। आजसे मुझको सदाके लिए दास जानें।"

पतितपावन श्रीरामानुजने पैरोंपर गिरे और रोते हुए धनुर्दासको प्रेमपूर्वक उठाकर आलिङ्गन किया और उसके समस्त सन्तापोंको शीघ्र ही हर लिया। दुराचारी कामुक देवता बन गया। यतिराजकी कृपासे पतिको दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई है, यह जानकर हेमाम्बाके आनन्दकी सीमा न रही। वह भी विषय-वासना त्यागकर श्रीरामानुजके शरण गई। अपार करुणासागर प्रणतार्तिहर्ता यतिराजने उसपर भी कृपा करके उसे मोहान्धकारसे उबारा। निचुल नगरको छोड़कर वे श्रीरङ्गमें आकर बसे और यतिराजके समीप एक घर लेकर वे दोनों रहने लगे।

धनुर्दासपर श्रीरामानुजका प्रेम दिनोंदिन बढने लगा। उसकी गुरुभक्ति, वैराग्य, विनय, सरलता, मधुरभाषिता प्रभृति अनेक प्रकारके गुणोंके कारण श्रीरङ्गके रहनेवाले समस्त नर-नारी उसको और उसकी स्त्रीको यतिराजका परम कृपापात्र समझकर बड़ा आदर करते थे। उसके देवतुल्य गुणोंकी उत्कृष्टता दिखानेके लिए ही प्रतिदिन स्नान करने जानेके समय यतिराज दाशरथिका हाथ पकड़कर वहाँ जाते थे और वहाँसे आनेके समय धनुर्दासका हाथ पकड़कर अपने मठमें आते थे। इससे उनके ब्राह्मण शिष्य मन-ही-मन कुढ़ते भी थे। किसी-किसीने तो उनको इस विरुद्ध आचरणके लिए एक-दो बातें भी कही थीं, परन्तु उन्होंने किसीको कुछ उत्तर नहीं दिया। एक दिन रात्रिमें सबके सो जानेपर यतिराजने सूखनेके लिए डाले हुए उन लोगोंके कौपीनसे थोड़ा-थोड़ा

वस्त्र फाड़ लिया। प्रातःकाल उठकर अपने वस्त्रकी इस प्रकार दुर्दशा देखकर शिष्यगण आपसमें लड़ने लगे, और वे आपसमे ऐसे दुर्वाक्योंका प्रयोग करने लगे, जिन्हें सुनकर नीच जातियोंको भी लज्जा आती है। इस प्रकार एक पहर तक उन लोगोंके लड़ते-झगड़ते रहनेपर यतिराजने किसी प्रकार उनका झगड़ा मिटा दिया।

उसी दिन रात्रिको उन्होंने अपने कईएक शिष्योंसे कहा—"देखो, आज मैं धनुर्दासको बातोंमें भुलाकर बड़ी देर तक अपने पास बैठा रखूँगा, उसी समय तुम लोग सोई हुई उसकी स्त्रीके समस्त आभूषण उठा लाना। देखूँगा कि इससे धनुर्दास और उसकी स्त्रीके हृदयमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न होता है या नहीं।" गुरुकी आज्ञासे ठीक आधी रातको शिष्योंने धनुर्दासके घरमें जाकर देखा कि उनकी स्त्री सोती है।

पतिके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई हेमाम्बाने घरके द्वार बन्द नहीं किये थे। अतः अनायास ही वे ब्राह्मण घरमें घुस गये। वे उसकी स्त्रीको खूब सोई हुई जानकर बड़ी सावधानीसे उसके अङ्गोंमें से गहने निकालने लगे। हेमाम्बाने यह जान लिया, परन्तु इधर-उधर करनेसे डरकर ब्राह्मण लोग भाग न जायँ, इसीलिये हेमाम्बा ज्यों-की-त्यों पड़ी रही। एक ओरके गहने निकाल लिये जाने पर दूसरी ओरके भी गहने उन लोगोंको देनेके लिये हेमाम्बाने सोई हुईके समान करवट बदली। इससे डरकर ब्राह्मणगण एक ही ओरके गहने लेकर चले गये। यतिराजने धनुर्दासको पास बुलाकर कहा—"बेटा, रात्रि अधिक हो गई, अब जाओ।" "यथाज्ञा भगवन्" कहकर धनुर्दासके चले जानेपर श्रीरामानुजने उन बनावटी चोर शिष्योंको बुलाकर कहा—"तुम लोग छिपकर उसके पीछे-पीछे जाओ और सुनो कि उन लोगोंमें क्या बातचीत होती है।" शिष्योंने

वैसा ही किया। धनुर्दास घरमें जाकर अपनी स्त्रीको उस अवस्थामें देखकर बोला—"यह क्या, तुम्हारे एक ओरके आभूषण क्या हुए?" हेमाम्बाने कहा—"प्रभो! कतिपय ब्राह्मण दरिद्रताके कारण चोरी करने आये थे। वे ही हमारे बहुमूल्य अलङ्कार ले गये हैं। मैं उस समय पड़ी-पड़ी भगवानका नाम स्मरण करती आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझको निद्रित जानकर उन लोगोंने धीरे-धीरे एक ओरके गहने उतार लिये। दूसरी ओरके भी गहने उन लोगोंको देनेके लिये मैंने करवट बदली, किन्तु अभाग्यवश वे डर गये और चले गये।" यह सुनकर धनुर्दासके दुःखकी सीमा न रही। वह कहने लगा—"तुमने करवट बदलकर बड़ा पाप किया है। अभी भी तुम्हारा अहङ्कार नष्ट नहीं हुआ। हमारा शरीर, हमारे गहने, हम दान करेंगी, इस दुर्बुद्धिके कारण ही तुमने काञ्चनरूपी विष्टाभारसे मुक्ति पानेका अवसर पाकर भी खो दिया। तुम यदि श्रीहरिको आत्म-समर्पण करके चुपचाप पड़ी रहती, तो वे तुमको निद्रित जानकर सभी गहने लेकर चले जाते। यदि तुम अपना मङ्गल चाहती हो, तो 'मैं' ज्ञानको एक बार ही सर्वदाके लिये दूर हटा दो।"

इससे अपनेको अपराधिनी समझकर हेमाम्बा रोती हुई कहने लगी—"प्रियतम! आप आशीर्वाद दें, जिससे ऐसा मोह मेरे मनमें कभी स्थान न पावे और मैं कभी अहङ्कारकी वशवर्तिनी न होने पाऊँ।"

इस देवतुल्य दम्पतिका निर्मल मनोभाव जानकर ब्राह्मणगण मठमें लौट आये और उन लोगोंने आद्योपान्त श्रीरामानुजसे निवेदन किया। रात्रि अधिक होनेके कारण उस समय विश्राम करनेके लिये यतिराजने आज्ञा दी। दूसरे दिन प्रातःकाल सिंहासनाधिपति ब्राह्मण शिष्य प्रातःकृत्य समाप्त करके पढ़नेके लिये यतिराजके चारों ओर बैठे। उन लोगोंको सम्बोधन करके यतिराजने कहा—"हे

शास्त्रज्ञ, ब्रह्मतत्वाभिमानी पण्डितो ! पहले दिन कौपीनके थोड़े फटनेसे तुम लोगोंने जैसा व्यवहार किया था, और आजको रात समस्त धन लुण्ठित होनेपर धनुर्दास और उसकी स्त्रीने जैसा आचरण किया है, उन दोनोंकी तुलना करके देखो कि कौन आचरण ब्राह्मणके योग्य हुआ है ?" यह सुन उन लोगोंने लज्जासे सिर नीचा कर किया। तदनन्तर सब लोगोंने एक साथ कहा—"प्रभो ! धनुर्दास ही ने ब्राह्मणोंके समान आचरण किया है। हम लोगोंका आचरण अत्यन्त निन्दित है।" यतिराजने कहा—"बच्चो ! इसी कारण यह जानना आवश्यक है—

न जाति· कारणे लोके गुणाःकल्याण हेतव· ।

—गुण ही कल्याणका कारण है, जाति नहीं। अतः सब कोई जात्याभिमान छोड़कर गुण प्राप्त करनेके लिये यत्न करो। जो जाति अहङ्कार उत्पन्न करे, उसके समान मनुष्योंका शत्रु दूसरा नहीं है। किन्तु यदि उससे आत्म-रक्षा हो सके, तो उसके समान जगत्में मित्र भी दूसरा नहीं है।" उसी दिनसे सिंहासनाधिपतियोंकी आँखें खुल गईं। उनका अज्ञानान्धकार गुरुके उपदेश-रूपी प्रकाशसे नष्ट हो गया।

चतुर्विंश अध्याय

कृमिकण्ठ

इस घटनाके अनन्तर एक दिन श्रीरामानुजने सुना कि उनके गुरु श्रीमहापूर्णने किसी शूद्र भक्तके मृतक शरीरका दाह किया है, इस कारण उस कार्यको ब्राह्मणोचित कार्य न कहकर उनकी सब निन्दा कर रहे हैं। इसका यथार्थ वृत्तान्त जाननेके लिये वे गुरु-गृहपर गये। वहाँ जानेपर उन्हें विदित हुआ कि श्रीमहापूर्णको उनके समस्त आत्मियोंने त्याग दिया है। इसी कारण अन्तुला श्वसुर-गृहसे आकर पिताकी सेवा कर रही है। श्रीरामानुज इससे बड़े दुःखित हुए और इसका कारण पूछनेपर श्रीमहापूर्णने कहा—"बेटा! सत्य है, धर्मशास्त्रके अनुसार यह अनुचित ही हुआ है। परन्तु धर्म किसको कहते हैं? 'महाजनो येन गतः स पन्था'—महापुरुष जिस मार्गसे जायँ, वही यथार्थ धर्मका मार्ग है। देखो, पक्षी होनेपर भी श्रीरामचन्द्रने जटायुका अन्तिम सस्कार किया था। युधिष्ठिर क्षत्रिय होकर भी शूद्र विदुरकी पूजा करते थे। इसका कारण क्या है? यथार्थ ईश्वरानुरागीके लिये जाति-पाँतिका बखेड़ा कोई पदार्थ नहीं है, वे सब वर्णोंसे श्रेष्ठ हैं, इस प्रश्नका यही उत्तर है। क्योंकि श्रीरामचन्द्र और युधिष्ठिरके समान धर्मरक्षक कभी भी विरुद्धाचरण नहीं कर सकते। मैंने जिस भक्तके शरीरका दाह-सस्कार किया है, वे मुझसे

सहस्र गुणा अधिक भगवद्भक्तिपरायण थे। उनकी सेवा करके मैं अपनेको कृतार्थ समझता हूँ।' यह सुनकर यतिराज परम आनन्दित हुए और गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके अपने सन्देहके लिये गुरुसे क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

एक समय आकर श्रीमहापूर्णने श्रीरामानुजको साष्टाग प्रणाम किया। जब यतिराज उससे कुछ भी विचलित नहीं हुए, तब उनके शिष्योंने पास आकर पूछा—"यतिराज, आपके गुरुने आपको साष्टाग प्रणाम किया, और आपने कुछ भी निषेध नहीं किया, इसका कारण क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया—

"गुरुणोक्त प्रकारेण वर्त्तन शिष्यलक्षणात्।
अतस्तेनोक्त मार्गेण वर्तेऽह वैनचान्यथा॥"

—शिष्यका लक्षण क्या है? अर्थात् गुरुके वचनके अनुसार रहना ही शिष्यका लक्षण है, यह सिखानेके लिये ही गुरुदेवने ऐसा आचरण किया है। अतएव मैं उनके इच्छानुसार वर्तना ही अपना स्वरूप समझता हूँ। चाहे वे उच्च स्थानमें रखें या नीच स्थानमें, यह उनकी इच्छापर निर्भर है। शिष्यको स्वतन्त्रता नहीं है। उसे गुरु-परतन्त्र सर्वथा होना पड़ता है। उनकी इच्छा ऐसी थी, तो मैं कैसे उसके विरुद्ध हो सकता हूँ? जब उन्होंने श्रीमहापूर्णसे इस विपरीत आचरणका कारण पूछा, तब उन्होंने कहा—"यतिराजके भीतर अपने गुरु श्रीयामुनाचार्यको देखकर मैंने उन्हें ही प्रणाम किया है।" इस कथनसे श्रीमहापूर्णने सबके सामने यतिराजका महत्व प्रकाशित किया।

श्रीगोष्ठीपूर्णको श्रीरामानुज साक्षात् नारायण जानते थे। एक दिन यतिराजने उन्हें घरका द्वार बन्द करके बड़ी देर तक ध्यान करते देखा। ध्यानके अन्तमें यतिराजने उनसे पूछा—"को मन्त्रः किंध्वते ध्यानम्"—आप किस मन्त्रका जप करते हैं और किस देवताका ध्यान करते हैं? उन्होंने इसका

उत्तर दिया—"मेरे गुरु श्रीयामुनाचार्यका चरणकमल ही मेरा ध्येय है, और मैं उन्हींके नामका जप करता हूँ।" तबसे श्रीरामानुज अपने गुरुदेवको नारायणसे भी अधिक समझने लगे।

उसी समय चोल-देशके राजाने अपनी राजधानीमें रहकर समस्त चोल-मण्डलको शैव मतावलम्बी करनेका सकल्प किया था। उसके समान सकीर्ण-चित्त, नृशस-हृदय राजा भारतवर्षमे दूसरा उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसमे सन्देह है। उसने निश्चय किया कि यदि श्रीरामानुज शैव मतको ग्रहण करें, तो समस्त चोल-मण्डल अनायास ही शैव मतावलम्बी हो जाय। यदि वे महात्मा वैष्णव मतका त्याग करके शैव मतको ग्रहण न करें, तो उनका वध कराकर चोल-राज्यमें शैव मतका एकाधिपत्य विस्तार करना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके उसने कतिपय बलवान और नृशस राजपुरुषोंको श्रीरामानुजको लिवा लानेके लिये उनके समीप भेजा। श्रीरगमे आकर उन लोगोने राजाकी आज्ञा कही। श्रीरामानुजने उसी समय उन लोगोंके साथ जाना स्वीकार किया, और तैयार होनेके लिये वे मठके भीतर गये। कूरेशने उनसे कहा—"मैंने सुना है कि आपको मरवा डालनेकी इच्छा ही से राजाने आपको वहाँ बुलाया है। आपके रहते चोल-राज्यमें शैव मतका प्रचार असम्भव जानकर उस नृशसने ऐसा भयानक काम करनेका निश्चय किया है। अतएव आपका वहाँ जाना किसी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि आपके जीवनकी रक्षा होनेसे इस पृथिवीका बड़ा कल्याण होगा। भगवानके चरणारविन्द प्राप्त करनेके लिये आप ही एक-मात्र पथ हैं। हमारे समान ससार-सन्तप्त, परम दु खी भी अनेक हैं, उनको आश्रय देनेकी शक्ति आप ही मे है। उनकी सहायता करनेवाला दूसरा नहीं है। अतएव आप मुझे आज्ञा दें, आपके स्थानमें मैं ही जाऊँ। आपके

काषाय वस्त्र मैं पहनूँ और आप मेरे श्वेत वस्त्र पहन दूसरे द्वारसे श्रीरंगको छोड़कर चले जायँ। अब और देर करनेका समय नहीं है। इसी समय तैयार हो जाइये।" यह सुनकर श्रीरामानुज थोड़ी देर तक तो कुछ सोचते रहे, पर अन्तमें उन्होंने कूरेशकी बात स्वीकार कर ली। उन्होने शीघ्र ही कूरेशको काषाय वस्त्र द्वारा सज्जित किया और स्वयं कूरेशके वस्त्र पहनकर अपने मठसे पश्चिमकी ओर चले गये। गोविन्द आदि शिष्योंने भी धीरे-धीरे उनका अनुसरण किया।

इधर कूरेश महानुभाव अपने गुरुके काषाय वस्त्र पहनकर और दण्ड-कमण्डलु धारण करके राजपुरुषोंके सामने उपस्थित हुए। उनके साथ श्रीमहापूर्ण भी हो गये। वे उन्हे श्रीरामानुज समझकर राजाके समीप ले गये। चोलराजने उन्हें देखकर पहले तो उनका बड़ा आदर किया। वे महागुणी तथा महाज्ञानी हैं, ऐसी उसकी धारणा थी। कूरेशको श्रीरामानुज समझकर उसने कहा—"महात्मन्! आप आसनपर बैठें। आपसे धर्म-विषयक उपदेश सुनने ही के लिये मैंने आपको यहाँ निमन्त्रित किया है। मेरी सभाके पण्डितगण भी आपसे वार्तालाप करनेके लिये उत्कण्ठित हैं। अतएव कृपाकर बतलाइये, हमारे जैसे मनुष्योंका कर्तव्य क्या है?" यह सुन कूरेशने कहा—"राजन् तथा पण्डितगण! सर्वलोकपावन श्रीविष्णु ही आब्रह्मस्तम्ब-पर्यन्त सभीके उपास्य हैं।" यह सुनते ही राजा मारे क्रोधके अधीर हो गया और कहने लगा—"आपको मैं परम पण्डित तथा भक्त जनता था, परन्तु इस समय देखता हूँ, आप भण्ड ही हैं। क्योंकि लोकगुरु सर्वसंहारक हरको परित्याग करके जब विष्णु-उपासनाकी आपकी प्रवृत्ति है, तब मालूम हो गया कि आप सामान्य मनुष्योंके समान नहीं हैं। वे सर्वलोकसंहारकारी हैं और

कालका भी नाश करते हैं। इसी कारण वे महाकाल कहे जाते हैं। काल-क्रमसे विष्णु भी जिनके द्वारा नष्ट हो जाते हैं, आप उन्हीं सर्वशक्तिमान भगवान शिवको छोड़कर जब अपेक्षाकृत दुर्बल विष्णुकी उपासना करनेके लिये परामर्श देते हैं, तब आपके समान अनभिज्ञ दूसरा नहीं है। आप वैष्णव मतको छोड़ दें। यहाँके पण्डितगण शास्त्र और युक्ति द्वारा आपको परमशिव तत्व समझा देंगे। उसे समझ आप आज ही शैव मत ग्रहण करें, ऐसा न करनेसे आपका भला न होगा।"

कृमिकण्ठके चुप हो जानेपर शिकारी कुत्ते जिस प्रकार अपने प्रभुका इङ्गित पाकर ढूँढ़नेके अनन्तर किसी यूथपति हाथीपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार सभास्थ पण्डितोंने कूरेशके प्रति आचरण किया। वे पण्डित शास्त्रोंका एक देश लेकर उनके साथ व्यर्थ वाक्-युद्ध करने लगे। कूरेश भी निर्भय होकर अपने मतका समर्थन करने लगे। इस प्रकार बहुत देर तक दोनोंमें शास्त्रार्थ होता रहा। अन्तमें राजाने कहा—"हे पण्डिताभिमानिन्, तुम यदि अपने प्राणोंकी रक्षा करना चाहो, तो यह मान लो—'शिवात् परतर नास्ति,' शिवसे बढ़कर दूसरा नहीं है।" इसका कूरेशने हँसकर निर्भीकतापूर्वक यह उत्तर दिया—"द्रोणमति तत परम्—शिवसे बड़ा द्रोण है।" यहाँ 'शिव' और 'द्रोण' शब्द दोनों परिमाणवाचक शब्द हैं। कूरेशकी ऐसी हँसीका यही कारण है कि चोलराज तथा उसके सभासदोंने अनन्त, अपरिमेय, अद्वितोय देवोंके भी अगोचर श्रीभग-वानकी इतिश्री करनी चाही थी, अर्थात् भगवान यही हैं, इसके अतिरिक्त भगवान कुछ भी नहीं हैं और न हो हो सकते हैं। मूर्खताके कारण इसी सिद्धान्तको सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त प्रमाणित करना वे चाहते थे। जहाँ धर्मके लिये कलह हुआ है, वहाँ अनन्त भगवानको अन्तवान प्रमाणित करनेका प्रयत्न दोनों

पक्षोंसे किया गया है, यह बात साफ-साफ मालूम पड़ती है। सुख-शान्तिके एकमात्र उपाय परम पवित्र धर्मके नामसे इस जगत्‌में कितना रक्तपात होता है तथा परस्पर द्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है, इसकी गणना कौन कर सकता है? मनुष्योंका ऐसा आचरण अत्यन्त निन्दित और अज्ञान-प्रसूत है, इस बातको बुद्धिमान-मात्र स्वीकार करेंगे।

कूरेश बुद्धिमानोंके शरोमणि और परम भक्त थे। उन्होंने श्रीरामानुजके चरणोंमें सर्वतोभावसे अपना मन-प्राण, बुद्धि, बल, देह और आत्मा समर्पण किया था। यह घटना उनकी गुरुभक्तिका अत्युज्ज्वल उदाहरण है। वे इस बातको खूब जानते थे कि चोलराजके समीप जाना मृत्युके मुखमें जाना है, तथापि गुरुके बहुमूल्य जीवनकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने अपने जीवनका परित्याग करना अत्यन्त सौभाग्यकी बात समझ रखा था, और उन्होंने अत्यन्त प्रफुल्ल चित्तसे इस कराल राजरूपी व्याघ्रके मुखमें प्रवेश किया था। सच्चे भक्त और सच्चे ज्ञानीका मन स्वभावसे ही भयशून्य होता है। 'आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन', अत राजाके भय दिखाने तथा राजपुरुषोंकी ताड़नासे कूरेश कुछ भी विचलित नहीं हुए। प्रत्युत अपनेको अत्यन्त भाग्यवान समझकर मन-ही-मन वे भगवानको यह कहकर धन्यवाद देने लगे—"हे स्वामिन्, इस अधम सन्तानपर आपकी असीम करुणाको स्मरणकर आज श्रीयामुनमुनिका अमृतमय यह वाक्य हृदयङ्गम हुआ है। मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ।"

नमो नमोवाङ्मन सातिभूमये,
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये,
नमो नमोऽनन्त दयैकसिन्धवे।

—ये राजा तथा ये समस्त गण्यमान्य मनुष्य भी तुम्हारी महिमा नहीं जानते , किन्तु तुमने इस अधम जीवको उपदेश देकर उसे निरहङ्कार और विनीत होना सिखाया है, इससे बढकर उसका और सौभाग्य क्या हो सकता है?

कूरेश जिस समय इस प्रकार ध्यानपरायण होकर प्राणोंकी तृष्णा मिटानेके लिये अपने प्रियतम भगवानके अनन्त गुणोंका आस्वादन करते थे, उसी समय उनके उपहास-वाक्यसे राजा और उनके सभासदोंको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। चोलराजने कड़ककर कूरेशको बाँधनेके लिये आज्ञा दे राजपुरुषोंसे कहा—"तुम लोग अभी इस दुरात्माको हमारे सामनेसे हटाओ और इसी समय इसकी दोनों आँखें निकाल लो, क्योंकि मैं इसका वध नहीं करना चाहता , परन्तु वधसे अधिक दु खदायी पीड़ा इसे दो। भविष्यत् अनन्त नरक-भोगका परिचय इसको इसी जन्ममें करा दो।"

इस बातको सुनकर कूरेशने उत्तर दिया—"हे मतिभ्रष्ट राजा! मैं इन आँखो को स्वय ही रखना नहीं चाहता। जिन्होंने तुम सरीखे पापीको देखा है, मैं स्वय ही उनको निकालकर फेंक देता हूँ।" यह कहकर कूरेशने अपने दोनो नेत्र निकालकर फेंक दिये।

राजाकी आज्ञासे राजपुरुषोने श्रीमहापूर्णको वनमे ले जाकर अनेक प्रकारके कष्ट देनेके अनन्तर उनकी दोनो आँखे निकाल लीं। इस प्रकार अत्यन्त कष्ट भोग करनेपर भी उन महात्माओंने किसी प्रकारका क्रोध नहीं किया। प्रत्युत वे पीड़न करनेवालोंके मङ्गलके लिए बार-बार भगवानसे प्रार्थना करने लगे और वे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय ससार-सागरके कर्णधारको इस यन्त्रणासे मुक्त कर सके हैं, यह सोचकर मन-ही-मन बड़े आनन्दित हुए। साधारण दु ख-सुखके लिए साधारण मनुष्य व्यस्त रहते हैं। उनकी समस्त शारीरिक और मानसिक

शक्तियाँ सुख-प्राप्ति और दुःख-हानिसे अनुप्राणित होकर दैहिक सुख ढूँढनेके लिए ही उन्हें व्याकुल किए रहती हैं। इससे बढकर भी कुछ कर्तव्य है, यह वे जान ही नहीं सकते। धनलभ्य कामादिका उपभोग करना ही उनका उद्देश्य रहता है। अतएव वे अनेक प्रकारसे अर्थ उपार्जन करनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु हाय, अनेक कष्टोंसे धन एकत्रितकर जब वे इन्द्रिय-सुख भोग करना प्रारम्भ करते हैं, तभी, सामान्य तृप्ति भी जब नहीं होने पाती, उन्हें यहाँसे विदा होना पड़ता है! यदि वे एक बार सोचकर देखें, कितने परिश्रमसे उन्हें सामान्य सुख खरीदना पड़ता है, तब ऐसा व्यापार करनेके लिए वे कभी उद्यत नहीं होंगे। इसी कारण प्रकृत पण्डित इन्द्रिय-सुखके लिए व्याकुल नहीं होते, किन्तु इन्द्रिय-समूह समस्त दुःखोंके मूल हैं, यह वे युक्ति और शास्त्र द्वारा प्रमाणित करनेका यत्न करते हैं। अनित्य वस्तुओंमें आसक्ति दुःखका कारण है। आज हो या दस दिनके बाद हो, परन्तु दुर्दमनीय काल तुम्हारी प्रिय वस्तुको एक दिन ले ही जायगा। उस समय तुम्हारे दुःखोंका समुद्र उमड़ आवेगा। अतएव स्त्री, पुत्र, देह, गेह आदिमें आत्म-समर्पण न कर श्रीभगवानके चरणोंमें आत्म-समर्पण करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। जो ऐसा कर सकते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता है। कूरेशने इस तत्वको खूब समझा था। इसी कारण अतुल ऐश्वर्यको दुःखका कारण जानकर उन्होंने उसका त्याग किया और श्रीरामानुजके चरणों की सर्व-सन्तापहारिणी छायाका आश्रय लिया था। उनकी स्त्रीने भी उन्हींका अनुसरण किया था, यह बात पहले हम लिख आए हैं। अतएव चोलराजके कठोर वचन और निष्ठुर आचरण कूरेशको व्यथित न कर सके, किन्तु उनसे कूरेश आनन्दित ही हुए। अनेक प्रकारके कष्ट देनेके उपरान्त दुराचारी

राजपुरुषो से कूरेशने साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—"भाइयो! तुम्हीं लोग हमारे सच्चे हितैषी हो, क्यो कि ये नेत्र-द्वय सृष्टिकर्त्ता परमात्माको ओर न ले जाकर मनुष्यो के मनको मायामयी विनाशी सृष्टिमें फँसा देते हैं। तुम लोगो की कृपासे आज हमने उन अपने दो परम शत्रुओ से उद्धार पाया। ईश्वर तुम लोगो का कल्याण करें।"

उनको इस प्रकार धीर और अनेक कष्टो को सहते देख और उनके शुद्ध चित्तसे आशीर्वाद देते सुन पाषाण-तुल्य राजपुरुषो के हृदयमें भक्ति और भयका सचार हुआ। उन लोगो ने कूरेशपर और अधिक अत्याचार नहीं किया और एक राही भिक्षुकको बुलाकर कहा—"तुम इनका हाथ पकड़कर श्रीरगम ले जाओ। यह रुपए ले जाओ, रास्तेमे खर्च करना।" भिक्षुक आनन्दित होकर कूरेशको श्रीरगम ले गया। श्रीमहापूर्ण रास्तेमें ही परमपदको प्राप्त हो गए।

कहा जाता है कि थोड़े दिनो के बाद ही राजाके कण्ठमें कण्ठमाला रोग हो गया और उसमे कृमि पड गए। राजा अत्यन्त दु ख भोगकर अन्तमें मर गया। इसीसे वह कृमिकण्ठ कहलाया।

पंचविंश अध्याय

विष्णुवर्द्धन

इधर श्रीरामानुज स्वामीके श्रीरंगके पश्चिम ओरके गहन वनमें छिपनेपर उनके भक्त क्रमशः उनके पास आने लगे। गोविन्द, दाशरथि, धनुर्दास आदिके आ जानेपर वे सभी पश्चिमकी ओर गहन वनमें चले। कृमिकण्ठके दूतोंको पता लग जानेपर वे क़ैद कर लिए जायँगे, इस भयसे वे लगातार दो दिन तक चलनेके पश्चात् अन्तमें चोलराज्यकी सीमापर पहुँचे। इस बीच उन लोगोंने कहीं निद्रा, आहार अथवा विश्राम तक भी नहीं किया। बहुत थक जानेके कारण वे एक पर्वतके समीप विश्राम करनेके लिए बैठे। क्षुधा, तृष्णा और निद्राके अभावके कारण उनका शरीर विवर्ण हो गया था। हाथ-पैर तीव्र वेदनाके कारण शिथिल हो गए थे। काँटोंपर चलनेके कारण उनके पैरोंमें कितने ही काँटे चुभ गए थे। अतः वे सभी पत्थरपर सो गए।

उसीके पास व्याधोंका एक पुरवा था। यद्यपि व्याध-जाति नीच होती है, तथापि उनका मन नीच नहीं था। ब्राह्मणोंको उस प्रकार सोए हुए देखकर उन लोगोंने जाना कि अत्यन्त कष्टसे थककर ही ये इस ब्राह्मणहीन प्रदेशमें भी सो रहे हैं। उन लोगोंने अनेक वन्य फल एकत्रितकर उन सोए हुओंके पास रख दिए, बहुत-सी लकड़ी लाकर आग जला दी तथा

एक ओर खड़े होकर भक्तिपूर्वक उन लोगोके जागनेकी अपेक्षा करने लगे। कुछ कालके उपरान्त निद्रा भग होनेपर श्रीरामानुज स्वामी और उनके शिष्यो ने अपनेको भला-चगा पाया। वहाँसे प्राय अस्सी हाथकी दूरीपर हाथ जोड़े कतिपय व्याध खडे हैं, पास ही फलकी राशि रखी हुई है और जलती हुई आगके पास काठका टेर रखा है। यह देखकर उन लोगो ने जान लिया कि भगवानकी कृपासे कतिपय सत्स्वभाव व्याधो के आश्रयमें हम लोग उपस्थित हैं। उन लोगो ने शीघ्र ही निर्मल सलिला नदीमे स्नान किया और फलो को जल द्वारा पवित्रकर भगवानको निवेदित किया। दो दिनोंके अनाहारके पश्चात् फलाहार करके वे बहुत ही प्रसन्न हुए। यतिराजने वहाँ कुछ देर तक विश्राम-कर और उन लोगो से बातें करके जाना कि वे लोग चोल-मण्डलकी सीमाको अतिक्रम कर आए हैं। वे व्याधो को आशीर्वाद देकर ब्राह्मणकी बस्ती ढूँढ़नेके लिए आगे बढे। एक-दो व्याध भी रास्ता बतलानेके लिए साथ चले। दोपहरके पश्चात् अपने शिष्यो के साथ यतिराज एक ब्राह्मणके घरपर पहुँचे। उस समय घरका मालिक नहीं था, किन्तु चेलाचलाम्बा नामकी उसको पतिव्रता सहधर्मिणी, जो वैष्णवी थी, अपने घरपर वैष्णवो का समागम देखकर बहुत प्रसन्न हुई और स्वामीके न रहनेपर भी यथाविधान उनकी पूजा करके पाक तैयार करनेमें लगी। भिक्षाटनके पश्चात् गृहस्वामी रगदास घरपर आकर अनेक वैष्णव अतिथियो को देखकर आनन्दित हुआ। शीघ्र ही उसकी भक्ति-मती स्त्रीने विष्णुका नैवेद्य तैयार करके अतिथियो को भोजनके लिए बुलाया। प्राय तीन दिन अनाहार रहनेके पश्चात् आकण्ठ भोजनकर यतिराज और वैष्णवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। दो दिन वहाँ रहकर चेलाचलाम्बाके पति रगदासको वैष्णव मन्त्रसे दीक्षित करके वे उत्तर-पश्चिमकी ओर चले। वहाँसे

व्याधों को बिदाकर, वे वहाँसे प्रात काल चलकर सन्ध्याके समय वह्निपुष्करिणी नामक स्थानपर पहुँचे। वहाँ दो दिन विश्राम करके यतिराजने रंगदासको बिदा कर दिया और शिष्यों के साथ शालग्राम नामक नगरमे जाकर वे परम तपस्वी आन्ध्रपूर्ण नामक ब्राह्मणके अतिथि हुए। आन्ध्रपूर्णका वैराग्य और भक्ति देखकर तथा उसका अभी तक ब्याह नहीं हुआ है, यह जानकर श्रीरामानुजने उसे वैष्णव मन्त्रसे दीक्षित किया और अपने सहचरों मे उसे कर लिया। उसी दिनसे आन्ध्रपूर्ण यतिराजकी काय, वाक्य और मनसे सेवा करने लगा। वह छायाके समान सर्वदा गुरुके समीप रहा करता था और उनको अपना इष्टदेव तथा सर्वस्व समझता था। श्रीरामानुज स्वामी कईएक दिन शालग्राम नामक गाँवमे रहकर नृसिंहक्षेत्रको गए। वहाँ आन्ध्रपूर्णसे भक्तग्राम-निवासी एक परमभक्तकी बात सुनकर श्रीरामानुज उनका दर्शन करनेके लिए शिष्यों के साथ गए। वहाँ वे एक दिन उस भक्तके अतिथि होकर रहे और वहाँके राजा विट्ठलदेव द्वारा निमन्त्रित होकर उसके यहाँ गए। यह राजा बौद्ध था। वह प्रतिदिन हज़ार-हज़ार बौद्धों की सेवा करता था। उसकी कन्याको राक्षस लगा था। कितने वैद्य बुलाए गए, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। अन्तमे राजाने बौद्धाचार्योंकी सहायता ली, परन्तु वह भी निष्फल हुई। जब विट्ठलदेवने सुना कि पूर्व-देशसे कतिपय वैष्णव पूर्णके घर आकर ठहरे हैं, तब उसने अपने पण्डितों द्वारा निमन्त्रित कराकर उन्हे अपने यहाँ बुलाया। श्रीरामानुजको देखते ही राजकुमारी आरोग्य हो गई। इससे विट्ठलदेवको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उनमें भक्ति करने लगा। यतिराजसे वैष्णव धर्मका उपदेश सुननेकी इच्छासे प्रणामपूर्वक उनके समीप जाकर उसने अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। जीव-हितपरायण उभय विभूतिपति, तेज-पुञ्जमय विग्रह, मधुर

स्वभाव, चार्वाक शैलके लिये वज्रके समान यतिराजने ऐसी सरल और मनोहर युक्तियों द्वारा उपदेश सुनाया कि वह अपना निरीश्वर भाव स्मरण करके बड़ा ही दु खी हुआ, और उसने बौद्धाचार्योंको बुलवाकर यतिराजके साथ शास्त्रार्थ करनेकी आज्ञा दी। उन लोगोंके स्वीकृत कर लेनेपर उसी दिन एक बड़ी सभा की गई। हज़ारों बौद्ध उस सभामे आये। उस महासभामे श्रीरामानुज वैष्णव धर्मकी व्याख्या करने लगे। उस समय कतिपय नीचमना बौद्ध पण्डितोंने उनको अपमानित करनेकी इच्छासे उपहास तथा कठोर शब्दोका प्रयोग आदि नीच उपायोका अवलम्बन करना चाहा, परन्तु वे उसी समय विट्ठलदेवकी आज्ञासे उस सभा-मण्डपसे निकाल दिये गये। इससे अन्यान्य बौद्ध पण्डितोंने इस नीच उपायका अवलम्बन करना छोड़ दिया। तदनन्तर यतिराजने अपना समस्त वक्तव्य सभासदोंके सामने निवेदन किया। उनके चुप हो जानेपर बौद्धोंके प्रधान पण्डित उनका प्रतिवाद करनेके लिये खड़े हुए, परन्तु वे वादीकी युक्तियोंका खण्डन न कर सनातनधर्मकी निन्दा करने लगे और ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास करनेवालोंकी निन्दा करने लगे। तब दु खित होकर विट्ठलदेवने कहा— "महात्मन्! पृथिवीमें निन्दा करना साधारण बात है। मैं आपके मुँहसे निन्दा सुननेको यहाँ नही बैठा हूँ। मैं आपको बहुत बड़ा पण्डित समझता हूँ। अत-एव सुलभ निन्दावाद छोड़कर दुर्लभ युक्तियुक्त शास्त्रीय वाक्यों द्वारा आप वादि-सिंहकी युक्तियोंका खण्डन करें, यही मेरी प्रार्थना है। यदि आप वैसा न कर सकें, तो अपना मिथ्या धर्म छोड़कर वैष्णव धर्म ग्रहण करें।" राजाको श्रीरामानुजकी ओर झुका हुआ देखकर बौद्ध पण्डितके मनमें कुछ भयका सञ्चार हुआ। उनका चित्त डाँवाडोल हो गया। उन्हें एक भी युक्ति नहीं सूझी। वे योंही थोड़ी देर तक प्रलापकर और अपने दलको दुःखी तथा वैष्णवोंको प्रसन्न

करते हुए सहसा अपने आसनपर बैठ गये। उनके सूखे हुए मुखमे बोलनेकी भी शक्ति न रही। अन्य बौद्ध पण्डितोंने भी अपने मतको स्थापन करनेका प्रयत्न किया, परतु वे कोई भी अपने कार्यमें सफल न हो सके। तब भक्तग्राम के राजाने सभास्थ पण्डितोंको सम्बोधन करके कहा—"सभ्यगण, आप लोगोंने देखा है कि बौद्ध पण्डितगण आज वैष्णवाचार्य द्वारा परास्त हो गये। वे सभी यहीं बैठे हैं। उन लोगोंमें किसीकी ऐसी शक्ति नहीं है कि अपने मतको स्थापित करके मरते हुए बौद्ध धर्मको प्राणदान दें। इस समय क्या करना चाहिए? मिथ्या धर्मका आश्रय ग्रहण करके सब दु खोंका आकर नरकमें पतित होना अथवा सत्य धर्मको ग्रहण करके सुखोंका आकर परम ज्ञानका प्राप्त करना, इन दोनोंमें कौन उत्तम है? बुद्धिमान मनुष्य ही इस बातको मानेंगे कि दु.खसे सुख और अज्ञानसे ज्ञान सभीका इष्ट है। यदि यही निश्चित सिद्धान्त है, तो आओ, हम सब लोग इस वैष्णवाचार्य द्वारा वैष्णव धर्ममें दीक्षित हों और अपनेको कृतार्थ करें।" प्रजावत्सल राजाके इस प्रकार कहनेपर कतिपय बौद्ध सन्यासियोंको छोड़कर अन्य सभीने उसकी बातका अनुमोदन किया, और उसी दिन सभी श्रीरामानुज द्वारा वैष्णव धर्ममें दीक्षित होकर कृतार्थ हुए। जिन बौद्ध पण्डितोंने राजाज्ञा नहीं मानो, वे प्रधान पण्डितोंको लेकर वहाँसे दूसरे राज्यमें चले गये। यतिराजने राजा विट्ठलदेवका नाम 'विष्णुवर्द्धन' रखा, और उन्होंने उसी नामसे व्यवहार होनेकी आज्ञा प्रचारित की।

षड्विंश अध्याय

यादवाद्रिपति

इस प्रकार श्रीरामानुज विट्ठलदेव तथा अनेक बौद्धोंको वैष्णव धर्मावलम्बी करके कतिपय दिनों तक वहीं रहे। तदन्तर शिष्योंके साथ वे यादवाद्रिके लिये प्रस्थित हुए। इस स्थानका वर्तमान नाम 'मेल्मोटा' है। १०२० शाकेमें वे यहाँ आये थे। उक्त वर्षके पूस महीनेकी शुक्र चतुर्दशी पुनर्वसु नक्षत्र वृहस्पति-वारको प्रात.काल वहाँ घूमते-घूमते तुलसी वनके बीचमें मिट्टीके भीतरसे एक देवताकी मूर्त्ति निकालकर और जल द्वारा स्नान कराकर जब यतिराजने उसे एक पवित्र पीठपर रखा, तब उस मनोहर मूर्त्तिको देखकर भक्तगण कृतार्थ हुए। उस मूर्त्तिको देखकर वहाँके वृद्ध कहने लगे—"हम लोगोंने बाल्यावस्थामें सुना था कि पहले इस पर्वतपर यादवाद्रिपतिकी पूजा होती थी, परन्तु जब मुसलमान आकर देवमूर्त्तियोंको नष्ट-भ्रष्ट करने लगे, तब भगवानके पूजकगण उस मूर्त्तिको कहीं छिपाकर दूसरे स्थानपर चले गये। तभीसे उनकी पूजा और उत्सव नहीं होते। जान पड़ता है कि यही यादवद्रिपतिकी मूर्त्ति है। आपके समान महानु-भावके आगमनसे पुन वे सेवा-पूजा ग्रहण करनेके लिये आविर्भूत हुए हैं।" यह सुन श्रीरामानुज स्वामीने कहा—"आप लोग ठीक कहते हैं, यही यादवाद्रिपति हैं। आज रातको स्वप्नमें इन्होंने सेवाके लिये मुझे आज्ञा दी है। आप सब

लोग मिलकर ऐसा करें कि एक विशाल और सुन्दर मन्दिर बन जाय और आजसे नियमित इनकी सेवा हुआ करे।" यतिराजकी आज्ञासे उनके शिष्यों तथा ग्रामवासियोंने उसी दिन एक बड़ी पर्णशाला बनवाई और उसमें यादवाद्रिपतिको स्थापित करके कायमनोवाक्य द्वारा वे उनकी सेवा करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें उनके लिये एक मनोहर और विशाल मन्दिर तैयार हुआ। कल्याणी नामकी एक पुष्करिणी भी मन्दिरके समीप ही थी। उसी पुष्करिणीके जलसे यादवाद्रिपतिके स्नान-भोगका काम चलता था। इसी पुष्करिणीके उत्तर ओर एक दिन घूमते-घूमते यतिराज श्वेत मृत्तिका निकालकर बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि वैष्णवगण उसी मृत्तिका द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र करते थे। अभी तक भक्तग्रामसे वे मिट्टी मँगाते थे, सो भी समाप्त हो चुकी थी। इसी कारण यतिराजने अनेक मनुष्योंको उसके अन्वेषणके लिए भेजा था, परन्तु कोई श्वेत मृत्तिका नहीं पा सका था, अतएव आज स्वय उस मृत्तिकाको पाकर यतिराज बड़े ही प्रसन्न हुए।

दक्षिणके प्रत्येक मन्दिरमें एक देवताकी दो मूर्त्तियाँ होती हैं। एकका नाम अचल मूर्त्ति है अर्थात् मन्दिरसे वह कभी बाहर नहीं निकलती और दूसरीका नाम चल मूर्त्ति है अथात् उत्सवके समय वही विमानपर निकाली जाती है। अतएव इसे उत्सव-मूर्त्ति भी कहते हैं। एक दिन स्वप्नमें श्रीरामानुज स्वामीको यादवाद्रिपतिने इस प्रकार कहा था—"वत्स रामानुज! मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ, परन्तु उत्सव-मूर्त्तिके न रहनेके कारण मैं भक्त और पतितोंका उद्धार नही कर सकता, अतएव शीघ्र ही दिल्लीके सम्राट्के पास रखी हुई 'रामप्रिय' नामकी मेरी उत्सव-मूर्त्ति जाकर लाओ।"

इस प्रकार भगवानसे आज्ञा पाकर दूसरे दिन प्रातःकाल कतिपय शिष्योंको लेकर श्रीरामानुज स्वामी दिल्लीके लिये प्रस्थित हुए। दो महीनेके पश्चात् वे

उस नगरमें पहुँचे। कहते हैं, उस समयके सम्राट् उनके शरीरकी कान्ति, पाण्डित्य और प्रभाव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और सम्राट्ने उनके आनेका कारण पूछा। श्रीरामानुजके 'रामप्रिय' नामक देवमूर्त्तिकी प्रार्थना करनेपर सम्राट्ने उस मूर्त्तिके ले जानेकी उन्हें आज्ञा दे दी। वे देवशालामें गये। यहाँ भारतके भिन्न-भिन्न नगरोंके मन्दिरोंसे लाई हुई मूर्त्तियाँ रखी थीं। श्रीरामानुज स्वामीने उनमें बहुत ढूँढ़ा, परन्तु अपनी अभीष्ट देवमूर्त्तिको वे न पा सके। तब सम्राट्ने अपनी कन्याकी अत्यन्त प्रिय एक देवमूर्त्ति दिखाई। श्रीरामानुजने उसीको रामप्रियकी मूर्त्ति बतलाया और दिल्लीश्वरकी आज्ञासे उस मूर्त्तिको लेकर श्रीरामानुज स्वामी शिष्योंके साथ अपने देशके लिये प्रस्थित हुए। उन लोगोंने मार्गमें बिना विश्राम किये दिन-रात चलना प्रारम्भ किया, क्योंकि यतिराजने निश्चित कर लिया था कि यदि सम्राट्की कन्या इस मूर्त्तिके लिये कातर होगी, तो दिल्लीपति उस मूर्त्तिको उन लोगोंसे छिनवा लेगा।

इधर जब राजकन्याने सुना कि उसके अतिशय प्रीतिपात्र पदार्थको कोई ब्राह्मण लिये जा रहा है, तब उसे बड़ा कष्ट हुआ। वह शोकसे व्याकुल हो गई। पिताके अनेक प्रकारके उपदेश-वाक्य व्यर्थ हो गये। वह दिन-पर-दिन उन्मत्तके समान होने लगी। इससे डरकर सम्राट्ने एक दल सेनाको आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र ही उस ब्राह्मणसे उस देवमूर्त्तिको छीन लाओ। राज-कन्याने कहा—"पिता, मुझे आज्ञा दें, मैं भी इन लोगोंके साथ जाऊँगी।" दुहितृवत्सल सम्राट्ने कन्याकी बातोंको स्वीकारकर, अनेक दास-दासियोंके साथ एक सज्जित पालकीमें उसे बठाकर और उसे उस दलकी अधिनेत्री बनाकर भेजा। एक राजकुमार सम्राट-कन्याके रूपपर मुग्ध होकर उसको ब्याहनेकी इच्छासे बहुत दिनोंसे सम्राटके यहाँ रहता था। उसने सम्राट्-कन्याको जब

देवमूर्त्तिके पीछे पागल होकर जाते देखा, तब वह भी अपनी प्रियतमाका विरह न सहकर चला।

इधर शिष्योंके साथ अविश्रान्त चलते-चलते श्रीरामानुज स्वामीने सम्राट्की राज्य-सीमाको अतिक्रमण किया। सम्राट्-नन्दिनी उस समय भी बहुत पीछे थी। अतः थोड़े ही दिनोंमें श्रीसम्पत्कुमारको लेकर यतिराज मेलकोटा पहुँच गये, और उन्होंने विष्णुकी उत्सव-मूर्त्तिको मन्दिरमें गुप्त रीतिसे रख दिया। मार्गमें उन्हे तीन चाण्डालोंने विशेष सहायता दी थी। यदि वे सग न चलते, तो अवश्य ही श्रीरामानुजको सम्राट्की सेनाके हाथों पड़ना पड़ता। इसी कारण आज तक चाण्डालोंको वर्षमें तीन दिन यादवाद्रिपतिके मन्दिरमें जानेका अधिकार है।

श्रीहरिके अखण्ड, अनन्त और निराकार रूपके समान असख्य साकार रूप भी नित्य हैं। इन साकार मूर्त्तियोंमें कई समय-समयपर पृथिवीपर अवतीर्ण होकर धर्म-ग्लानि दूर करती हुई मानवोंका कल्याण करती हैं। कोई-कोई अर्चावतार अथवा प्रतिमाके आकारमें अवतीर्ण होकर भक्तोंकी पूजा ग्रहण करती हुई उनकी मनोकामना पूर्ण करती हैं। इन मूर्त्तियोंको भगवानका अर्चावतार कहते हैं। अनेक अर्चावतारोंके समान यादवाद्रिपति भी एक अवतार हैं। उन्हीं उत्सव-विग्रह सम्पत्कुमारको ले आनेको श्रीरामानुज स्वामी गये थे और सम्राट्की कन्या ने इनका अनुसरण किया था। स्थूलदर्शियोंकी स्थूल दृष्टिसे यद्यपि इस देवमूर्त्तिमें कुछ विशेषता मालूम न पड़ी, तथापि यतिराज सूक्ष्मदर्शी थे। वे जानते थे कि साक्षात् विष्णु ही अर्चा-रूपसे अवतीर्ण होकर साम्राट्-कन्याको कृतार्थ करनेके लिये उसके पिता द्वारा बँधे हुए थे। बहुजन्मार्जित प्रगाढ़ भक्तिके कारण दिव्य-चक्षु प्राप्तकर सम्राट्-कन्याने उन्हें पति-रूपसे वरण किया था। जिस समय

श्रीरामानुज उसके जीवनाधारको लेकर चले, उस समय उसका अपने प्राण दे देनेका सकल्प करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है ।

सम्राट्-कन्या बिना खाये-पिये अपनी सेनाके साथ अपने प्रियतमको ढूँढ़नेके लिये बराबर दक्षिणकी ओर चलती गई । परन्तु अपने पिताके राज्यकी सीमा अतिक्रमण करनेपर भी जब उसने कुछ पता नहीं पाया, तब तो वह प्राण देनेको तत्पर हुई । विरह-तापसे उसका हृदय जलने लगा । उसकी आँखोंसे अविरत अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । वह किसी प्रकार धीरज नहीं धर सकी । राजकुमारके समझानेको मानो वह सुनती ही न थी । सर्वदा 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहकर वह अपने हृदयका दु ख प्रकाशित करने लगी । वह रात्रिको अपने सैनिकोंसे छिपकर दक्षिणकी ओर गहन वनमें घुस गई । राजकुमार उसके पीछे-पीछे चला । वह पगली स्त्रीके समान केवल अपने इष्टदेवका ध्यानकर दक्षिणकी ओर जाने लगी । राजकुमार बनैले फल-मूल लाकर उसे दे देता । उसके द्वारा अपनी क्षुत्पिपासा दूर करके वह बराबर अपने प्रियतमको ढूँढ़नेके लिये आगे बढ़ती गई । रात होनेपर मार्ग न दिखाई देनेके कारण वह कहीं-कहीं ठहर जाती । इस प्रकार बहुत दिनों तक चलनेके अनन्तर वह मेलकोटा पहुँची । जिस प्रकार आँखवालोंको सूर्यको देखनेके लिये किसी प्रकारकी आवश्यकता नहीं होती है, उसी प्रकार हरि-भक्तिपरायणा राजकन्याको भी अपने प्रियतम रामप्रियसे मिलनेके लिये किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं हुई । प्राणोंकी अधिक उत्कण्ठा और प्राणेश्वरका आकर्षण—इन दोनों शक्तियोंके प्रभावसे उनका समागम शीघ्र ही हुआ । नदी सागरमें मिलित हुई । मृतप्राय क्षुधातुर अमृतका पूर्ण पात्र पाकर जिस प्रकार आनन्दित होता है, वह उससे भी अधिक आनन्दित हुई ।

उसकी अलौकिक भक्ति देख यतिराज और उनके शिष्य चकित हो गये ।

उन्होंने उसको मुसलमान कुलोत्पन्न होनेपर भी मन्दिरमें जानेका निषेध न किया, क्योंकि वे जानते थे कि प्रकृत भक्तकी कोई जाति नहीं होती है।

सम्राट्-नन्दिनीका ससार-वनमें घूमना समाप्त हुआ। उसकी साध पूरी हुई। उसके जीवनका बचा हुआ भाग प्रिय-समागमके अनिर्वचनीय आनन्दसे सुशोभित हुआ। अन्तमें उसका पवित्र अङ्ग श्रीरामप्रियके अङ्गमें लय हो गया।

राजकुमार अपने अभीष्ट देवके समान सम्राट्-कन्याकी सेवा करता था। उसको छोड़कर दूसरे देवताकी वह उपासना नहीं करता था। उसके हृदयकी अधीश्वरी जब रामप्रियके अङ्गमें लीन हो गई, तब वह वहाँ एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सका। वह अपना समस्त मुसलमानी भाव छोड़कर शरीर और चित्तकी शुद्धिके लिये श्रीरङ्गम-क्षेत्रमें जाकर श्रीरङ्गनाथस्वामीके शरणागत हुआ। मन्दिरमें जानेका उसको अधिकार न रहनेपर भी वह बाहर ही रहकर अनन्य चित्तसे भगवानके चरणोंका आश्रित हुआ। वह भिक्षाके लिये कहीं नहीं जाता था। यदि कोई उसे भोजनके लिये कुछ देता था, तो वह वहीं ले लेता था। इस प्रकार यदृच्छा लाभसे सन्तुष्ट होकर वह दिन बिताया करता था। एक दिन उसने ध्यानमें सुना—

"प्रपन्न मोक्षदानेऽह दीक्षितो यवनेश्वर।
पतिताना मोक्षदाने जगन्नाथ प्रदीक्षितः॥"

—हे यवनेश्वर, मैं शरणागत पतितोंको मोक्ष देनेके लिये दीक्षित हुआ हूँ, पतितोंके उद्धार करनेके लिये तो जगन्नाथ दीक्षित हुए हैं। यह सुनकर प्रात-काल वह श्रीजगन्नाथपुरीके लिये प्रस्थानित हो गया। कईएक महीनोंके बाद वह श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें पहुँचा और भगवानका दिव्य दर्शन कृपाकर तार्थ हुआ। श्रीजगन्नाथकी कृपासे उसने समदर्शित्व प्राप्त कर लिया।

हो गये और बोले—"आज मैं कृतार्थ हुआ। यतिराजने इस महाविषयीको स्वीकार करके अपने विशाल हृदयकी अनन्त महिमा प्रकाशित की है। आज ही मैं श्रीवरदराजकी शरणमें जाकर यतिराजके लिये अपनी आँखें माँगूँगा।" इतना कहकर वे शीघ्र ही श्रीवरदराजकी आनन्दमयी मूर्तिके समीप जाकर स्तुति करने लगे। भक्त-चित्त-सन्तापहारी श्रीहरि कूरेशके प्रति प्रसन्न होकर बोले—"वत्स कूरेश, तुम पुन क्या प्रार्थना करते हो? तुमको न देने योग्य कोई वस्तु नहीं है। कहो, मैं इसी समय तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करता हूँ।" कूरेशने कहा—"भगवन्, कुछ दिन हुए, मैंने अभीष्टदेवकी दो प्रिय वस्तुएँ खो दी हैं। आपकी कृपासे आज मैं पुनः उन्हें प्राप्त करूँ।" श्रीवरदराजने कहा—"वत्स, दिव्य नेत्रद्वय तुम्हारे पवित्र देहकी पुनः शोभा बढ़ावें और तुम्हारे इष्टदेवको आनन्दित करें। तुम्हारे समान भक्तोंके दर्शन और सेवाके लिये ही मैं मर्त्यलोकमें रहता हूँ। जिस प्रकार भक्तगण मेरे दर्शन और सेवाकी प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी भक्तदर्शन और सेवासे अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ। ज्योतिहीन सूर्यके समान भक्तहीन भगवानका ज्ञान होना कठिन है। सुन्दरी है, परन्तु उसके अङ्ग नहीं हैं, ऐसा कहना जिस प्रकार उन्मत्तता है, उसी प्रकार भगवान हैं, भक्त नहीं, यह कहना भी है।" श्रीभगवानके ऐसे अमृतमय वचन सुनकर मारे आनन्दके कूरेश आत्मा-ज्ञान-शून्य हो गये। तदनन्तर ज्ञान आनेपर और ज्ञानचक्षु पानेसे वे बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर भगवानसे कहने लगे—"भगवन्! हे इच्छामय! आपकी लीलाको हमारे समान क्षुद्र जीव क्या जान सकते हैं! आपकी सृष्टि आनन्दमयी, आपकी रक्षा आनन्दमयी तथा आपकी प्रलयकारिणी निद्रा भी आनन्दमयी है। सुख-स्वरूप तुम और सुख-स्वरूप त्वदीय—इन दोनोंको दुःख-स्वरूप जानकर मेरे समान अज्ञानी हो दुःख पाते हैं। आज आपकी दयासे

मेरा अज्ञान दूर हुआ। अहा! मेरा भाग्य कैसा है! आपका अनुग्रह कैसा है!" ऐसा कहते-कहते आनन्दमें उन्मत्त होकर कूरेश नाचने लगे। उनके ज्ञानचक्षु प्राप्त होनेके कारण सभी विस्मित हुए। सम्मुखस्थ भगवान और भक्तों पर उन लोगोंकी गाढ़ भक्ति हुई। वे अपनेको परम भाग्यवान समझने लगे।

एक दिन कूरेश श्रीरङ्गनाथकी स्तुति कर रहे थे। भगवानने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि अभीष्ट वर माँगो। कूरेशने परमपदको माँगा, तो भगवानने कहा—"केवल तुम्हींको नहीं, तुम्हारे सम्बन्ध-सम्बन्धीको भी मैं मुक्ति देता हूँ।" इसको सुनकर श्रीरामानुज नाचने लगे थे।

अष्टाविंशति अध्याय

श्रीरामानुजके शिष्योंके अलौकिक गुण

श्रीरंगम आनेके लिये यतिराज शिष्योंके साथ यादवाद्रि छोड़कर सुन्दरबाहुकी सेवाके लिये मार्गमें बनालमें कुछ दिनों तक ठहरे। यह स्थान वर्तमान मदुराके पास है। आण्डालने अपने रचित स्तव द्वारा भगवान सुन्दरबाहुके निकट यह प्रार्थना की थी—

"कुरुषे यादमां देव, पाणिग्रहण मंगलम्।
क्षीराद्यनेक संयुक्त गुडान्नस्य घटान् शतम्।
समर्पये हरे तुभ्य नवनीत घटान् शतम्।"

—हे हरे, यदि तुम हमारा पाणिग्रहण रूप मंगल विधान करोगे, तो मैं तुम्हें सौ घड़ा क्षीर आदि नाना विधि पदार्थ-युक्त गुड़ान्न और सौ घड़े मक्खन समर्पण करूँगी।

भगवानने आण्डालकी इस प्रार्थनाको पूर्ण किया था। वह हरि-प्रेममयी देवतुल्या सती हरिको पति-रूपमें पाकर उन्हींमें लीन हो गई थी, अतएव अपनी बात पूरी नहीं कर सकी थी। श्रीरामानुज स्वामीने आण्डालके मानसिक संकल्प पूर्ण करनेके लिये भगवान सुन्दरबाहुको सौ घड़े गुड़ान्न और सौ घड़े मक्खन समर्पित किया था। भ्राताके समान काम करनेके कारण वे गोदाग्रज अर्थात् गोदा या आण्डालके बड़े भाईके नामसे प्रसिद्ध हैं।

यहाँसे आण्डालकी जन्मभूमि देखनेके लिये यतिराज श्रीविल्लीपुत्तुर गये। वहाँ शेषशायी नारायणका दर्शन करके आण्डालके मन्दिरमें गये। प्रेमपूर्वक आण्डालकी पूजा और स्तुति करके वे कृतार्थ हुए। वहाँ कुछ दिन रहकर वे कुरुका नगरीमे गये। वहाँसे चलकर और भी कतिपय पवित्र तीर्थोंका दर्शन करते हुए अन्तमे शेषशायी नारायणका दर्शन करके श्रीरगमस्थ अपने मठमें उपस्थित हुए। यतिराजका लौट आना सुनकर समस्त नर-नारियोंके हृदयमें मानो पुन प्राण सचार हुआ।

महात्मा कूरेश गुरुके आनेका शुभ सवाद सुनकर उनको प्रणाम करनेके लिये दौड़े आये। उनकी स्त्री और पुत्र पराशर भी पीछे-पीछे चले। जो जिस अवस्थामे था, वह वैसा ही यतिराजके दर्शनके लिये चला। यतिराजके मठकी ओर मनुष्य-समूह उमड़ पड़ा। मठ आनन्दमय हो गया। कूरेश यतिराजके साथ और यतिराज कूरेशके साथ मिलकर दोनों परस्पर परम आनन्दित हुए। इसी प्रकार दो वर्ष बीत गये। अब कूरेश बहुत वृद्ध हो गये हैं। वृद्धावस्थाके कारण उनका शरीर शिथिल हो गया है। इस अवस्थामें कुछ दिनों तक रहकर भक्तवृन्द-वेष्टित यतिराजके सामने उच्च स्वरसे भगवत् गुणानुवाद सुनते हुए श्रीगुरुकी पादुकाद्वय हृदयमें धारणकर भक्ताग्रणी कूरेशने मृत्यलोक परित्याग किया। इस महाभागवत्के वियोगसे सबको विशेष कष्ट हुआ। यतिराजकी आँखोंसे अविरत अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने आत्मसयम करके अपने उपदेशों द्वारा सभीको शान्त किया और कहा—"हे भक्त गण, आजसे तुम लोग इसी कूरेशनन्दनको, यथार्थमें श्रीरगनाथस्वामीके पुत्र पराशरको अपना राजा समझो। ये ही भविष्यत्में इस श्रीवैष्णव सम्प्रदायको वशमे रख सकते हैं। पिताके समान इनकी भक्ति और स्वाभाविक ज्ञान-गम्भीरता

अतुलनीय है ।” यह कह यतिराजने स्वय पराशरको सिंहासनपर उपवेशन कराया और उनके मस्तकपर पुष्पोंका मुकुट और गलेमें फूलोंकी माला पहनाकर सब वैष्णवोंको उन्हें आशीर्वाद देनेके लिये कहा, तदनन्तर स्वय उनको वैष्णवी शक्ति द्वारा पूर्ण करके उनको कृतकृत्य और भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ बतलाया ।

कूरेशका पवित्र शरीर कावेरी-तीरपर जलाया गया और वह दिन सकीर्तन-महोत्सवमें व्यतीत किया गया । यतिराजके प्रभावसे किसीके मनमें दु खका लेश भी नहीं रह गया । इसके अनन्तर एक मास तक क्रमश उत्सव होता रहा । दूर-दूरके दीन-दरिद्र ब्राह्मण-वैष्णव आ-आकर श्रीरगनाथस्वामीका प्रसाद खाते और प्रसन्न होकर चले जाते थे ।

महात्मा कूरेशके वैकुण्ठ-गमनके अनन्तर यतिराज श्रीरगम छोड़कर दूसरी जगह नहीं गये । अनेक स्थानोंसे उनके दर्शनके लिये कितने नर-नारी आते थे, इसकी गणना कौन कर सकता है ? उस समय उनकी अवस्था साठ वर्षकी हो चुकी थी । इसके पश्चात् साठ वर्ष और शिष्योंके साथ सबका कल्याण करते हुए उन्होंने श्रीरगनाथस्वामीकी सेवामें व्यतीत किये । आन्ध्रपूर्ण सर्वदा यतिराजकी सेवामें लगे रहते थे । वे और किसीको ईश्वर नहीं जानते थे । श्रीरामानुज स्वामी ही उनके सर्वस्व थे ।

एक बार श्रीरगनाथस्वामी अपने दल-बलके साथ भक्तोंको दर्शन देनेके लिये अपने मन्दिरके बाहर आये थे । भगवानका दर्शन करनेके लिये जो जहाँ थे, वे वहींसे दौड़े और भगवानकी पूजा करने लगे । उस समय आन्ध्रपूर्ण यतिराजके लिये दूध गर्म कर रहे थे । वे दूध नीचे उतारकर अनायास ही भगवानकी पूजा कर सकते थे । श्रीरामानुज स्वामी अपने अन्य शिष्योंके साथ श्रीरगनाथस्वामीके दर्शनके लिये गये थे । परन्तु आन्ध्र-

पूर्ण एक मुहूर्तके लिये भी दूधको छोड़कर बाहर नहीं गये। वे गुरु-सेवाको ही सर्वोत्तम समझते थे। इसी कारण उनका ध्यान अन्य कर्मोंकी ओर नहीं जाता था। "देव दर्शन करनेके लिये हम लोग गये थे, तुम अकेले मठमें क्या करते थे?" यतिराजके ऐसा पूछनेपर वे कहने लगे—"दीनशरण, बाहरके देवकी उपासनासे घरके देवकी उपासनामें त्रुटि होनेके भयसे मैं श्रीरंगनाथ स्वामीका दर्शन करनेके लिये नहीं गया। उस समय मैं दूध औंटा रहा था।" यह सुनकर श्रीरामानुज स्वामी तथा उनके अन्यान्य शिष्य बहुत प्रसन्न हुए।

यतिराजके समस्त शिष्य ही गुणवान थे। अनन्ताचार्य नामक शिष्य गुरुकी आज्ञासे स्त्रीके साथ श्रीशैलपर वास करते थे। वे भगवत्कार्य ही को जीवका एकमात्र कर्तव्य जानकर उन्हींकी उपासनामें लगे रहते थे। श्रीशैलपर रहकर उन्होंने देखा कि वहाँ रहनेवाले भक्तोंको जलके बिना बड़ा कष्ट हो रहा है। अतएव उन्होंने अपने हाथसे एक तालाब खोदना प्रारम्भ कर दिया। उनकी स्त्री खोदी हुई मिट्टी सिरपर रखकर दूर फेंक आया करती थी। बहुत दिनों तक वे इसी प्रकार करते रहे। एक समय उनकी स्त्री गर्भवती हुई। अतएव वह मिट्टीका बोझ सिरपर रखकर बहुत धीरे-धीरे जाकर फेंक आती थी। यथार्थ ही उसे बड़ा कष्ट होता था। कुछ देर तक मिट्टी ढोनेके पश्चात् वह एक वृक्षके नीचे विश्राम करनेके लिये बैठी और बैठते ही उसे निद्रा आ गई। कहते हैं, सर्वसन्तापहारी भगवान उसीका रूप धारण करके मिट्टी ढोने लगे। वे इस कामको इतनी जल्दी-जल्दी करने लगे कि अनन्ताचार्यको सन्देह हुआ, और उन्होंने उनकी ओर देखकर पूछा— "तुम तो पहले ही गर्भ-भारके कारण बहुत धीरे-धीरे चलती थी, इस समय तो तुमको और थक जाना चाहिए, परन्तु देखता हूँ, तुम एक

बलवानके समान बहुत शीघ्र-शीघ्र काम कर रहो हो, इसका कारण क्या है ?" ऐसा पूछा जानेपर स्त्री-रूपधारी भगवानने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। प्रत्युत वे हँसते हुए उनकी ओर देखने लगे। इससे अनन्ताचार्यका सन्देह और भी बढ़ा। उन्होंने काम छोड़कर हाथमें कुदार लेकर तालाबके ऊपर जाकर देखा कि उनकी स्त्री पास ही एक वृक्षके नीचे अचेत सो रही है। तब वे क्रोध करके कुदार हाथमें लिये मन्द-मन्द मुस्कानेवाली स्त्रीको ओर बढ़े और कहने लगे—"तुम बड़े मायावी हो। माया द्वारा समस्त ससारको छलनेपर भी तुम्हारी तृप्ति नहीं हुई! तुमने आज इस निरपराध दरिद्र ब्राह्मण-दम्पतिका कैङ्कर्य नष्ट करनेके लिये यह स्त्री-वेश धारण किया है। हम लोग तुम्हारे भक्त हैं। तुम्हारी मायामें क्या ऐसी शक्ति है कि तुम्हारे भक्तोंका वह किसी प्रकार अपकार कर सके ? तुम स्वय मङ्गलमय हो, तथापि तुम्हारे भक्तोंका अमङ्गल ही तुम्हारा मङ्गल है। कहो तो सही, तुम्हें अपने भक्तोंके लिये क्या-क्या नहीं करना पड़ा है। तपे तेलमें भूँजा जाना, हाथीके पैरों-तले पड़ना, क्षत्रियका दूत और सारथि बनना, वनवास करना तथा गोपियो द्वारा बाँधा जाना आदि कितने ही नीचजनोचित कष्ट तुम्हें सहने पड़े हैं, यह कौन नहीं जानता। अतएव, हे नाथ! कैङ्कर्य-हानि द्वारा हम लोगोंका अमङ्गल विधान करके क्यो अपना अमङ्गल कर रहे हो ?" इस प्रकार कहते-कहते परम भागवत अनन्ताचार्यकी आँखो से भगवानके साक्षात् दर्शन होनेसे आनन्दाधिक्यके कारण आँसू बहने लगे। उनके हाथसे कुदार भूमिपर गिर पड़ा। उसी हास्यमयी नारी-मूर्त्तिने देखते ही देखते सुन्दर श्रीनिवासकी मूर्त्ति धारण की। उस मूर्त्तिका दर्शन करके मारे आनन्दके स्तुति करते हुए अनन्ताचार्य सज्ञाहीन होकर भूमिपर गिर गड़े। उसी समय भगवानकी कृपासे उनको स्त्री भी उठी और भगवानका दर्शन करके परम

आनन्दित हुई। भगवान भी भक्तपर इस प्रकार दया दिखाकर अन्तर्हित हो गये।

अनन्ताचार्यका खोदा हुआ तालाब इस समय भी श्रीशैलपर 'अनन्त-सरोवर'के नामसे प्रसिद्ध है और उस महात्माका यशोगान कर रहा है।

उदार प्रकृति, निर्मल हृदय भगवद्भक्तों के प्रति श्रीरामानुज स्वामीकी कैसी भक्ति थी, यह बात नीचे लिखी एक घटनासे साफ समझमें आ जायगी।

एक समय एक सीधा भक्त ब्राह्मण यतिराजके समीप आकर कहने लगा—"महात्मन्, मैं आपका कैङ्कर्यकर अपनी आत्माको पवित्र करने आया हूँ। आप समस्त प्राणियों को पवित्र करनेवाले परम गुरु हैं। मैं आपकी सेवा द्वारा त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाना चाहता हूँ।" यह सुनकर श्रीरामानुजने कहा—"आपने बहुत अच्छा निश्चय किया है। कैङ्कर्यके अतिरिक्त जीवों के लिये मुक्तिका दूसरा उपाय नहीं है। आप यदि कैङ्कर्य द्वारा मेरा सन्तोष करना चाहते हैं, तो मेरे समीप रहकर आपको क्या करना होगा, सो मैं कहता हूँ।" उस ब्राह्मण ने बड़े आग्रहसे पूछा—"प्रभो, अभी कहिये, मैं उसके करनेको तैयार हूँ।" श्रीरामानुजने उसका अधिक आग्रह देखकर कहा—"ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैंने आजसे प्रतिज्ञा की है कि परम पवित्र वैष्णव चरणोदकके पान द्वारा देह और मनको पवित्र करके प्रतिदिन पूजा करूँगा। आज भाग्यवश आपके समान विशुद्ध वैष्णव आ गये हैं। अतएव आप यहाँ रहकर हम लोगों को अपना पवित्र चरणोदक देकर कृतार्थ किया करे। उसी प्रकार करने ही से मेरी यथार्थ पूजा होगी।" सरल और उदार ब्राह्मणने उसी प्रकार मान लिया। वह प्रतिदिन यतिराजके लिये मठमें अपेक्षा करता था। मध्यान्हके समय कावेरी-जलसे स्नान करके और उस ब्राह्मणका चरणोदक लेकर इष्टदेवताकी आराधनाके लिये

यतिराज नित्य बैठते थे। एक दिन यतिराज किसी शिष्यके यहाँ भिक्षा करनेके लिये गये। वहाँ पूजा समाप्त करके यतिराजने नारायणका प्रसाद ग्रहण किया। वहाँ अनेक भक्तोंके साथ ईश्वर-सम्बन्धी कथा-वार्ता करनेके पश्चात् वे आठ बजे रात्रिको घर लौटे। मठमें प्रवेश करते ही यतिराजने देखा कि वह ब्राह्मण तब तक उनके लिये बैठा था। यतिराजने पूछा—"महात्मन्! आप क्या हमारे लिये अभी तक बैठे हैं, आपने भोजन तो कर लिया है?" ब्राह्मणने हँसकर कहा—"आपका कैङ्कर्य बिना किये मैं कैसे खा सकता हूँ।" यह सुन यतिराज बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"आप धन्य हैं। कैङ्कर्यमें आप ही के समान महापुरुषका अधिकार है। आपने भक्तिसे भगवानको अपने हृदयमें बाँध लिया।" यह कहकर उन्होंने इस बार उनका चरणोदक ग्रहण किया और शिष्योंसे भी ग्रहण करवाया।

एकोनत्रिंश अध्याय

मूर्त्तिप्रतिष्ठा और तिरोभाव

श्रीरंगममें आनेके लिए यादवाद्रिसे प्रस्थान करनेके समय वहाँके शिष्य श्रीरामानुजके विरहके भयसे व्याकुल हो गए थे। यतिराजने अपनी मूर्त्ति बनाकर और उसमें अपनी शक्ति संक्रान्तकर उन्हें दे दी और कहा—"प्रियगण, तुम लोग हमारी मूर्त्तिको हमारा ही स्वरूप जानना। हमारा दर्शन करनेकी उत्कण्ठा होनेपर इसीके दर्शनसे तुम लोगोंको शान्ति प्राप्त होगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।" यह कहकर यतिराज भक्तोंसे बिदा हुए।

उनकी जन्मभूमि महाभूतपुरीके निवासी भक्तोंने इस घटनाके कईएक दिनोंके पश्चात् उनकी मूर्त्ति बनवाकर वेद-विधिके अनुसार उसकी प्रतिष्ठा करके एक विशाल मन्दिरमें उसे स्थापित किया। कहते हैं, उस समय श्रीरामानुज स्वामी अपने श्रीरंगमस्थ मठमें बैठकर शिष्योंको पढ़ा रहे थे। उसी समय वे चुपचाप बैठ गए, उनका शरीर ज्ञानशून्य हो गया और उनकी आँखोंसे दो बिन्दु रुधिर निकल पड़ा। कुछ क्षणके बाद उनके संज्ञा लाभ करनेपर शिष्योंने इसका कारण पूछा, तब वे कहने लगे—"आज भूतपुरीनिवासी भक्तोंने हमें अपने प्रेमके पाशमें बाँध लिया। उन लोगोंके हमारी मूर्त्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा

करनेपर हमे ज्ञान लाभ हुआ है।" यह सुनकर उनके शिष्यो ने साक्षात् गुरु-मूर्त्तिका सर्वदा दर्शन करनेके कारण अपनेको अधिकतर सौभाग्यशाली समझा।

श्रीरंगमके रहनेवाले भक्तगण अधिक भाग्यवान थे, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि यतिराजने अपने जीवनके शेष साठ वर्ष श्रीरंगनाथस्वामीके चरणों ही में बिताए थे। दूर-दूरसे हज़ारों नर-नारी उनके दर्शन तथा भक्ति-
अमृतोपम वचन सुननेके लिए आते थे। उनके दर्शन और उपदेशसे
चित्त आए हुए भक्त भी आशातीत आनन्द प्राप्तकर अपने-अपने स्थानपर
थे। थोड़े ही दिनोंमें समग्र दक्षिण-देश उनकी सन्तापहारिणी शक्तिके प्र
परिचालित होकर श्रीमन्नारायणके चरणोंकी सन्निधिमें राम-राज्यके समान
नुभव करने लगा। इस प्रकार अनेक मनुष्योंके कल्याणके लिए एक सौ
वर्ष मर्त्यलोकमे वासकर, पृथिवीको वैकुण्ठके समान सुखकी अधिका
बनाकर और अपने शिष्योंको सब प्रकारसे अपने समान गुणवान बनाकर मह
लक्ष्मणावतार उभय विभूतिपति श्रीमद्रामानुजाचार्यने परमपदमें लीन हो
इच्छासे चित्तवृत्तियोंको अन्तर्मुखी करके तूष्णीभाव अवलम्बन किया। इ
पहले उन्होने अपने किसी शिष्यसे अपना यह अभिप्राय प्रकाशित नहीं कि
था। परन्तु उन लोगोंने उसका अनुमोदन नहीं किया। अतएव जब स
शिष्यमण्डलने आचार्यके तूष्णीभाव ग्रहण करनेका कारण जान लिया, तब
पितृमातृहीन अनाथ और असहाय बालकके समान अधीर होकर रोने लगे
कोई-कोई शोक-वेगको न रोक सकनेके कारण चिल्लाकर रोने लगे। इस
भक्तवत्सल यतिराजका चित्त चचल हो गया, उनकी समाधि टूट गई
उन्होंने भक्तोंकी कातरता देखकर कहा—"वत्सगण, तुम लोग अज्ञानीके समा

इस प्रकार क्यों घबराते हो ? मैं सर्वदा ही तुम लोगोंके हृदयमें वास करता हूँ। तुम लोगोंको छोड़कर एक मुहूर्त भी मेरे लिए रहना असम्भव है। अतएव क्यों स्त्रियोंके समान मोहके वशवर्ती होकर बालकोंके समान काम कर रहे हो ?" यह सुन समस्त शिष्यमण्डल कहने लगा—"हे देव, यह सत्य है ; परन्तु आपके शरीरका अदर्शन हम लोगोंके लिए बड़ा कष्टकर है। अतएव हम लोगोंपर कृपाकर और कुछ दिनों तक आप इसकी रक्षा करें।"

भक्तोंका सुख-विधान करना ही जिनके जीवनका पवित्र व्रत है, उन्हीं सर्वाभीष्ट पूर्णकर्त्ता आचार्यवर्यने अपने शिष्योंके कहनेसे तीन दिन और उनके साथ मर्त्यलोकमें रहना निश्चित किया। समस्त शिष्योंको पास बुलाकर उन्होंने उपदेश-रत्नमाला उन्हें दी। इस रत्नमालासे उनके शिष्यगण तथा समस्त जगत् सर्वदाके लिए कृतार्थ हो गया। लौकिक रत्नोंकी अपेक्षा वे रत्न कितने मूल्यवान हैं, यह बात दोनोंकी शक्तिपर विचार करनेसे स्पष्ट ही मालूम पड़ेगी। सोना, हीरा, मोती आदि रत्न मनुष्योंको इसी जन्ममें यत्किंचित् सुख देते हैं, सो भी उनको, जो किसीकी अनिष्ट चिन्ता नहीं करते और जिनके सद्बुद्धि-परिचालित आत्मामें किसी प्रकारकी मलिनता नहीं है। परन्तु जो कोई भाग्यवान इन उपदेश-रत्नोंमें से एकको भी अपने अधिकारमें कर सका, उसके इस जीवनमें सुख-शान्तिका तो कुछ पूछना ही नहीं, वह भावी जन्ममें भी सतत सुख पाकर कृतकृत्य ?

भक्तोंको यथार्थ धनके द्वारा धनी बनाकर यतिराजने शिष्यों से कहा—"इस समय तुम्हारे समस्त अज्ञान दूर हो गए। तुम लोगो ने ठीक-ठीक जान लिया है कि भागवत् भक्त और भगवान एक ही हैं। अतएव यथार्थ भक्त भगवानसे किस प्रकार पृथक् रह सकता है ? मैं तुम लोगो के भीतर

और तुम लोग मेरे भीतर सर्वदा वर्तमान रहते हो, इसी कारण हमारे नश्वर देहके नाशसे तुम लोगो को व्यथित नहीं होना चाहिए। यह सुन दाशरथि, गोविन्द, आन्ध्रपूर्ण आदि कतिपय शिष्यो ने कहा—"जिन चरणो के स्पर्शसे हमारे समान अनेक अज्ञानी जीव मृत्युजननी अविद्याके पजेसे मुक्त हुए हैं, जिस सुविशाल श्रीनिकेतन, उदार हृदय, जीव-दया परिपूर्ण श्रीविष्णु चरण द्वयाकित मुख-कमलसे परम पवित्र वाङ्मयी गगाने प्रवाहित होकर समस्त भारतको स्वर्गतुल्य बना दिया है ; हे जीव समूहके एकमात्र शरण ! उन्हीं पवित्र अगो का समष्टिभूत यह शरीर नश्वर बुद्धियो को अविनश्वर करता हुआ स्वय नश्वर कैसे हो सकता है ? हम लोगो का शरीर अनित्य है , परन्तु आपका यह शरीर नित्य है। अतएव हम लोगो को आपका दर्शन मिलता रहे, वैसा उपाय आप करें।"

श्रीरामानुज स्वामीने कहा—"निपुण शिल्पियो को बुलाकर हमारी मूर्त्ति बनवा लो।" इस प्रकार आज्ञा पाकर शिष्योंने शीघ्र ही उसका प्रबन्ध किया। तीसरे दिन यतिराजकी मूर्त्ति तैयार हुई। उन्हो ने उस मूर्त्तिको कावेरी-जलमें स्नान करवाकर पीठपर स्थापित कराया और—

"ब्रह्मरन्ध्र समाघ्राय स्वशक्तिं तत्र दत्तवान्।"

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रको सूँघकर उसमें अपनी शक्ति दी। तदनन्तर शिष्योंको सम्बोधित करके उन्हो ने कहा—"यह हमारा दूसरा रूप है। इसमें किसी प्रकारका भेद नहीं है।" यह कहकर—

"गोविन्दाके निधायाथ शिरः शेते महामनाः।
आन्ध्रपूर्णस्य चोत्सगे सम्प्रसार्याघ्रि पकजे ॥"

अर्थात् वे महामना श्रीमद्रामानुजाचार्य गोविन्दकी गोदमें अपना मस्तक और

आन्ध्रपूर्णकी गोदमें चरण रखकर, १०५९ शाकेकी (खृ० अ० ११३७) माघ शुक्ला दशमी शनिवारके मध्याह्नमें सामने रखे हुए अपने गुरु श्रीमहापूर्णकी पादुकाओ का दर्शन करते हुए परमपदके लिए प्रस्थित हुए। कहते हैं, उस समय 'धर्मो नष्ट.' अर्थात् मूर्त्तिमान् धर्म मनुष्यो के चक्षुसे अन्तर्हित हो गया—यह आकाशवाणी हुई थी। 'अकस्य वामागति' इस वचनके अनुसार उक्त वाक्यके प्रधान र, न, म और ध अक्षरो द्वारा १०, ५, और ९ ये अक लब्ध होते हैं। इसके द्वारा पण्डितगण यतिराजके परमपद प्रयाणका समय १०५९ शाके निश्चित करते हैं। इसके कतिपय दिनो के पश्चात् उनके बालमित्र गोविन्द भी उनके अनुवर्ती होकर परमपदमें उनके साथ मिलित हुए। अन्यान्य वैष्णव श्रीपराशरभट्टके आज्ञानुवर्ती होकर यतिराजकी चैतन्यमय छायाके आश्रयसे धर्मसस्कार-कार्यमे लगे रहे। भक्तिके बलसे सर्वदा अपने-अपने हृदयमें गुरुका दर्शन करते हुए शिष्यगण गुरु-विरह-तापसे रक्षित हुए।

श्रीवैष्णव धनी ध्यान दें

आजकलका समय देखते हुए और जीवोकी दुर्दशापर ध्यान देते हुए इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि श्रीसम्प्रदायका प्रचारकर इस ससारके चक्करमे पड़े जीवोंका उद्धार किया जाय। इनके उद्धारका सबसे सरल और सुलभ उपाय यह है कि श्रीसम्प्रदाय-सम्बन्धी पुस्तकें भाषान्तर कराकर प्रकाशित करवाई जायँ और सर्वसाधारणमें उनका प्रचार कराया जाय। यह काम धनियों और विद्वानोके मेल ही से हो सकता है। अत हम श्रीवैष्णव धनियोका ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं। अभी हमारे पास छपवानेके लिये दो उत्तम ग्रन्थ तैयार हैं। उनमें से एकका नाम है नारदपाञ्चरात्रान्तर्गत **'भारद्वाज संहिता'**का भाषानुवाद। अनुवाद सरल भाषामे और श्लोकाक देकर किया गया है। पढ़नेवाला यदि चाहे तो अर्थको मूल श्लोकसे मिला सकता है। यह सहिता श्रीवैष्णवोंका सर्वस्व है। इसमें ऐसी उपयोगी बातें हैं, जिनको जाने बिना कोई श्रीवैष्णव कहला ही नहीं सकता। अत इसका प्रकाशित होना परमावश्यक है। अभी तक इस सहिताका भाषानुवाद कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ।

दूसरी पुस्तकका नाम **'प्रपत्तिवैभव'** है। श्रीवैष्णवोंको 'प्रपत्ति' शब्दका अर्थ समझानेकी आवश्यकता नहीं। इसे हम श्रीवैष्णव सम्प्रदायका गुटका (A Manual of Shri Vaishnava Sect) कह सकते हैं। प्रात -

क्रियासे लेकर शयन पर्यन्त श्रीवैष्णवोंके कृत्य सब इसमे हैं। इसमे व्रतं त्सवादिनिर्णय, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कमयोगका वास्तविक रूप, सौहृदासो निर्णय, जीव श्रीशके पास किस मार्गसे जाता है, वैकुण्ठ-वर्णन आदि प्राय: स जानने योग्य बातें हैं। प्रत्येक विषय भाषाके दोहोमे है और प्रत्येक दोहे संस्कृतमे शास्त्रीय प्रमाण-युक्त व्याख्या है, जिससे ग्रन्थका महत्व बहुत ब गया है। इस पुस्तकका प्रत्येक श्रीवैष्णवके पास होना परमावश्यक है। ग्रन तैयार है, किन्तु इसके लिये एक ऐसे प्रकाशककी आवश्यकता है, जो इ छपवाकर धर्मार्थ बाँटे।

जो सज्जन इनमें से एक भी ग्रन्थके प्रकाशनका भार उठाना चाहें, वे नी लिखे पतेपर हमसे पत्र-व्यवहार करें।

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा,

दारागज, प्रयाग।